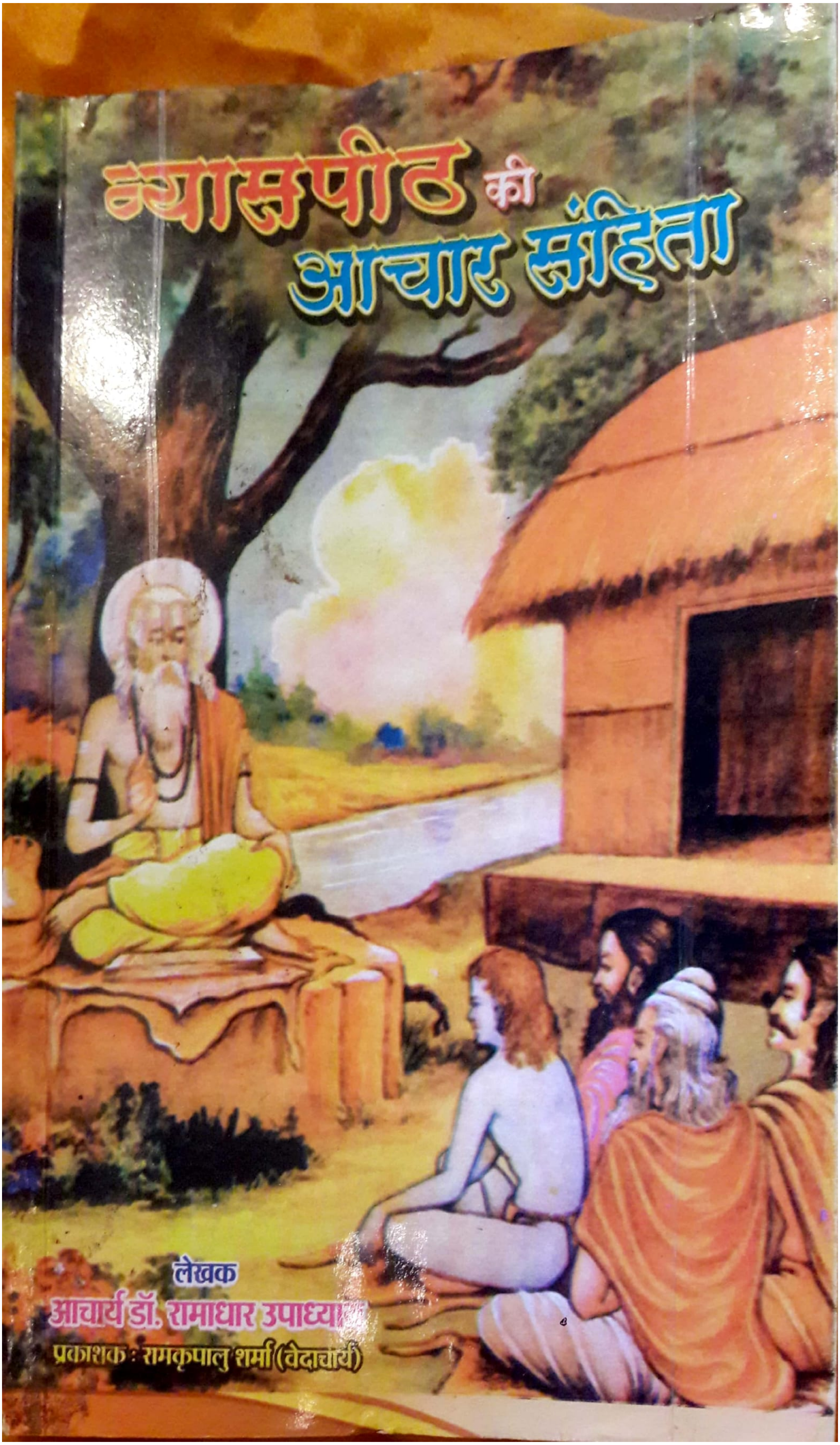
व्यासपीठ की आचार संहिता



लेखक
आचार्य डॉ. रामाधार उपाध्याय
प्रकाशक : रामकृपालु शर्मा (वेदाचार्य)

।। श्री रामः शरणं मम।।

व्यासपीठ की आचार संहिता



लेखक :

आचार्य डॉ. रामाधार उपाध्याय

विद्या वाचस्पति (एम.ए., पी.एच.डी., संस्कृत)

प्रकाशक :

पं. रामकृपालु शर्मा (वेदाचार्य)

17, रामायणम्, श्रीराम कुंज, श्रीराम कॉलोनी

होशंगाबाद रोड, भोपाल (मध्यप्रदेश)

मोबा.: 9826787902

प्राक्कथन

स्व-स्व प्रतिनियत कर्मों के करने वाले तो प्राय: सभी जीव हैं। उन सभी में शास्त्राधिकारी मात्र मानव ही हैं। अतएव भगवान् शंङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में कहा कि "**मनुष्याधिकारित्वाच्छास्त्रस्य**" "**शास्त्रमधिकरोति हि मनुष्य**" विधि निषेधात्मक शास्त्र पशुवत्-जड़वत् मानव को पूर्ण मानव बनाने के उद्‌देश्य से ही अपौरुषेय श्री भगवान् वेद का प्राकट्‌य हुआ जाकी सहज श्वाँस श्रुति चारी। "धर्मो विश्वस्य जगत: प्रतिष्ठा" तथा "**वेदो प्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद् विपर्यय:**" वेद विरुद्ध जो भी चतुर्वर्णाश्रम का आचरण है, वह निन्द्य तथा अग्राह्य है। यदि धर्म न होता तो माता भगिनी व्यवहार, अभक्ष्य भक्षण, अपेयपानादि पशुधर्मवत् मानव में भी होते। उसी स्वर्णाश्रमाचारोचित धर्म पालन से पाशविकता की निर्वृति पापों का शमन, कल्याण मंगल की प्राप्ति तथा अन्त:करण की पूर्ण संतुष्टि के साथ उभयलोकों में मंगलत्वपूर्ण मानव देह जन्म का सार्थकत्व प्राप्त होता है।

अब प्रश्न उठता है कि यह सभी हमको उपलब्ध कहाँ कैसे होगा? भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में कहा कि "**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिन:**" गीता 4/34 यथार्थज्ञाता तत्वान्वेषीजनों द्वारा दिये ज्ञानोपदेश से कार्यसिद्धि, आत्मशुद्धि, अज्ञान निर्वृति, सद्‌बुद्धि और श्रम की सफलता प्राप्त होती है। शाङ्कर भाष्य में लिखा गया कि "**आचार्या: उपदेक्ष्यन्ति कथयिष्यन्ति ते ज्ञानं यथोक्तं विशेषणम् ज्ञानिन:। ये सम्यग्दर्शिन: तै: उपदिष्टं ज्ञानं कार्यक्षमं भवति न इतरद् भगवतो मतम्**"

यह तथ्य सुनिश्चित विचारणीय है कि आज इतने धर्मोपदेश दीक्षा के पश्चात् भी व्यक्ति में आत्मशांति आचरण शुद्धि सद्‌बुद्धि प्राप्त नहीं है। अवश्य प्रविधि में कहीं न कहीं कोई भूल हो रही है। बुद्धिमान व्यक्ति

इन न्यूनताओं पर अवश्य ही विचार करता है। उपदेशक व्यास जगत् का आज वर्णाश्रमधर्म विहीन व्यवसायीकरण हो गया है। **धनाद् धर्म ततः सुखम्** के स्थान पर **धर्माद् वित्तं ततः सुखम्** की वृत्ति उत्तरोत्तर वृद्धिगत हो रही है।

इस समस्या के समाधान पर कुछ लिखने का विचार इसलिए बन गया कि व्यासपीठ की मर्यादाओं पर अत्यन्त आक्रामक स्थितियाँ निर्मित होने लगीं। यह लेखन किसी ईर्ष्या-द्वेष या हीन भावना से ग्रस्त होकर नहीं लिखा जा रहा है, प्रत्युत सत्य को, शास्त्रादेश, महापुरुषों के मन्तव्य को यथारूप परोसने का उपक्रम मात्र है। समाज यथार्थ के मध्य सत्य का साक्षात्कार तथा भविष्णु पीढ़ी को यथार्थ का बोध हो जावे, यही इसका मूलोद्देश्य है हम तो शास्त्र तथा गुरुजनों के ऋण से उऋण होने का, उनकी सेवा करने का इस रूप में संकल्प मात्र ही कर रहे हैं। यही प्रभु की प्रेरणा भी है।

लगभग 20 वर्ष पूर्व श्रीमद्भागवत पुराण तथा मानसजी के माध्यम से व्यासपीठ पर पहुँचने का श्री गुरुकृपा से सुयोग प्राप्त हुआ। यह प्रश्न कि व्यासपीठ का वास्तविक अधिकार वर्णाश्रमानुसार किसको होना चाहिये, इस पर चिन्तन आरंभ हुआ। ऋषि परम्परा के संस्कारों के कारण यह चिन्तन स्वाभाविक भी था। आरंभिक मंचीय प्रवेश में नये छात्र की तरह तदनुकूल रहना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता रहा। **"ननु नच"** का मन तो होता था, किन्तु पूर्वाचार्यों को भी वहीं देखकर मन शांत हो जाता था। इस पर शास्त्रीय दृष्टि भी रखी गई। महापुरुषों से डरते डरते पूछा भी गया। कुछ दिन पश्चात् मंचों की अध्यक्षता की सेवा भी प्राप्त होने लगी। भय धीरे धीरे दूर होने लगा। विगत पाँच वर्षों से इसके बारे में विशेष विचार विनिमय होने लगा।

एतद्विषयक एक संक्षिप्त ग्रंथ लेखन का विचार भी विगत् दो वर्षों से मन में आता रहा। परम पूज्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री रामभद्राचार्यजी

तुलसी पीठाधीश्वर (चित्रकूट) पूज्य श्री जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्री हर्याचार्य जी काशीपीठ, पूज्य जगद्गुरु, शङ्कराचार्य स्वामी श्री निश्चलानन्दजी पुरी, शास्त्रार्थ पं. श्री प्रेमाचार्यजी शास्त्री (दिल्ली), वैष्णव कुल भूषण श्री महन्त रामजीदास जी ब्रह्मचारी (बिलासपुर), पं. मानस प्रपन्न जी आदि की भी आज्ञा, सहमति प्राप्त हुई। इसमें सर्वाधिक प्रोत्साहन श्रद्धेय पं. श्री प्रेमाचार्यजी शास्त्री शास्त्रार्थ पंचानन (दिल्ली) का प्राप्त हुआ। हमारे अभिन्नात्मन् परम प्रिय मानस मृगेन्द्र डॉ. ब्रजेशजी दीक्षित (जबलपुर) का तो पदे-पदे विचार बिन्दु विनिमय विमर्श चलता ही रहा। वे पथ सहचरवत् ही रहे।

थोड़ा मनोबल पुष्ट हुआ। इस लेखन के पीछे यही कष्ट प्रमुख है। आज व्यास जगत में ब्राह्मण संस्कारी शास्त्रवान सम्पन्न ही नहीं शास्त्र आचरण संपन्न जनों की अत्यन्त कमी प्रतीत हो रही है। अशास्त्रीय विचारधारा मन्मुखी वक्तव्य निरंकुश निबंध, पतनोन्मुखी प्रबन्धों की बाढ़ देख कर मन घबरा उठता है। यथा श्री हनुमानजी के हृदय में भरत जी को रावण दिखाई दे रहा था "**निशिचर मन अनुमान**" अतः बाण मार दिया। लक्ष्मण जानकी जी से होली खेलते थे। चित्रकूट में लक्ष्मण उर्मिला के विरह में रोते थे। दशरथजी कामी थे, कैकेयी सर्वथा निर्दोष थी, रामायण को आगे बढ़ाने में मंथरा शूर्पणखा का सर्वाधिक सहयोग रहा है। श्री राम लक्ष्मण मांसाहारी थे, हनुमानजी अभिमानी थे और रामजी छलपूर्ण लीला करते थे। मारीच सबसे बड़ा भक्त था। आदि आदि इन व्याख्याओं को फिल्मी गानों को, सुनकर मंच पर रोना ही आता है। फिर आज दूरदर्शन के व्यासों को सुनकर तो ऐसा लगता है कि रसा रसातल में क्यों नहीं धस रही है।

आचार्यों, तपः पूत व्यक्तित्व विप्रों की सन्निधि तथा उनकी उपेक्षा का ही परिणाम हम आज देख रहे हैं। इस पर गंभीरता से सोचना है कि मूलतः अधिकारी व्यक्ति पीछे रह गये, अनधिकारियों के हाथ में बागडोर पकड़ा दी गई। अनेक व्यासपीठ लोलुपजनों ने प्रवक्ता प्रवक्त्रियों ने तो अपनी जाति तक छिपाकर ब्राह्मण गोत्रीय लिखकर समाज को छलने का सफल प्रयास

किया है। श्रवण में तो **रामकथा के तेइ अधिकारी जिन्ह कै सत्संगति अति प्यारी।** हैं पर उपदेश तथा कथा श्रवण कराने में सुयोग्य शास्त्र सम्मत, अधिकृत महापुरुषों की आवश्यकता है। जो "**जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी**" की क्षमता रखते हैं। इसे लिखने का अभिप्राय यह नहीं समझें कि संपूर्ण अर्हताएं मुझ में हैं तथा दूसरों में नहीं। इस प्रणयन का मूल मन्तव्य है, शास्त्र सम्मति से कार्य करना।

आज ब्राह्मणेत्तर व्यास तथा रजस्वला अवस्था में महिलाओं का भी व्यास पीठारोहण एक दुर्भाग्य पूर्ण विडम्बना है। कई बहिनों से इस विषय में हमने साग्रह निवेदन भी किया, पर वे इसके प्रमाण माँगने का अभिनय करती रही, तथा अपनी मनमानी करती रही। यह प्रमाण प्रस्तुति उनके लिए भी तथा वे बंधुजन जो इसके लिए सर्वथा अयोग्य हैं उनके लिए तथा आयोजकों के, श्रोताओं के हितार्थ एक भेंट या उत्तर है।

यह मेरा प्रथम प्रयास नहीं है, इसी संदर्भ में परमपूज्य धर्मसम्राट, स्वामी करपात्रीजी पं. माधवचार्यजी, ब्रह्मलीन भी प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, स्वामी अखण्डानंदजी जगद्गुरु, कृष्ण बोधाश्रमजी, माधवाचार्यजी, जगद्गुरु निरंजन देवतीर्थजी, पं. श्री रामकुमारदासजी रामायणी अयोध्या ये सभी ब्रह्मलीन महापुरुष भी सदा इन शास्त्रीय प्रमाणों को बोलते रहे हैं। वर्तमान में जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्वामी रामभद्राचार्यजी गत प्रयाग कुंभ में इसी विषय पर बोले थे। पं. श्री प्रेमाचार्यजी शास्त्री दिल्ली, पं. श्याम नारायणजी शास्त्री काशी आदि विद्वान् भी वर्तमान में शास्त्रीय पक्ष को देते हुए, ब्राह्मणेतर तथा स्त्री प्रवक्त्री व्यास का निषेध कर रहे हैं।

जिन आचार्यों से मुझे जो भी इस ग्रंथ के निमित्त उपलब्ध हुए हैं, मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता समर्पित करता हूँ। "**नैव शिक्षयामि स्मरामि केवलम्**" आशय है सनातन संस्कृति के श्रद्धालु इसको हृदयंगम करने की न्यायत: कृपा करेंगे।

विषय सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

ऋग्वेद

अथर्ववेद

शतपथ ब्राह्मण

बृहदारण्यकोपनिषद्

तैंत्तरीयोपनिषद्

महाभाष्य

निरुक्तम्

गृह्यसूत्र

योगवासिष्ठ

वाल्मीकि रामायण

महाभारत

मनुस्मृति

पराशरस्मृति

अत्रि स्मृति

गौतम स्मृति

दक्ष स्मृति

आपस्तंब स्मृति

शातातप स्मृति

विश्वामित्र संहिता

ब्रह्म पुराण

विष्णु पुराण

श्रीमद्भागवत पुराण

स्कन्द पुराण

पद्म पुराण

ब्रह्म वैवर्त पुराण

गरुड़ पुराण

भविष्य पुराण

बाराह पुराण

शिव पुराण

भगवद्गीता

श्रीरामचरित मानस

कवितावली

तिथ्यादि सत्त्वम्

नैषधीय चरितम्

मेरुतंत्र

कौशिकी संहिता

रामतापनीयोपनिषद्

मेरु तंत्र

कौशिकी संहिता

कारणागम प्रायश्चित

नारद पाञ्चरात्र

पूज्य धर्माचार्यों की, विद्वानों की आज्ञा तथा सहमति

कुलाधिपति, धर्म चक्रवर्ती, महाकवि, महामहोपाध्याय, तुलसी पीठाधीश्वर अनंत श्री विभूषित जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्वामी श्री रामचन्द्राचार्य जी (चित्रकूट)

श्रीः पाराशर्यं तमीडेऽहं, श्री हरेर्ज्ञान विग्रहम्।

यद् भासा भासते नित्यं, व्यासपीठं सुपावनम्।।

मैंने मानस सार्वभौम डॉ. रामाधार उपाध्याय द्वारा प्रणीत ''व्यासपीठ की आचार संहिता '' नामक निबंध पुस्तक का मनोयोग के साथ प्रत्यक्षर श्रवण किया। इस तरुण-मनीषी के गहनतम शास्त्रीय अध्यवसाय से मेरे मानस को नितान्त परितोष हुआ है। कलिकाल की कदाचार कल्पित, कालुष्य-कलित कदन्य, कदुद्भुत, कदशन, कदालंबित, कदर्थना-कन्दित, कदूष्ण वाष्पस्तंमित चटुल चीत्कार से प्रसूत जिन शास्त्रोक्त ज्ञान-प्रसूनों का इन विपश्चिद विप्रसूनु रत्न ने सयत्न संचयन किया है, यह इन पंडित प्रकाण्ड के निरुद्दण्ड विवुधगवी वाङ्मयोन्नयन का परिचायक है।

मैं इस तथ्य के सत्यापन में किसी प्रकार का संकोच नहीं कर रहा हूँ कि डॉ. रामाधार उपाध्याय ने इस निबंध में जो कुछ कहा है वह सर्वथा शास्त्रसम्मत सुविचारित सत्याथेय एवं निरवद्य है। इसे कलिकाल की कदर्शना ही कहना होगा कि बीसवी शती का उत्तरार्द्ध व्यास जगत के भाग्याकाश में धूमकेतु समान ही उदित हुआ।

इसमें असंस्कृत, अभक्त, अशिष्ट एवं अनधीती वक्ताओं और वक्त्रियों को स्वछन्दता और स्वेच्छाचारिता के लिए पूर्ण अवसर मिल गया। वैदिक धर्म के धर्मानुसार या तो स्वयं किसी पार्टी विशेष के निर्माता बने या किसी पार्टी विशेष प्रभावित हुए। अतएव धर्माचार्य भी कहीं न कहीं न्यूनाधिक

मात्रा में सत्य कहने और सत्य निर्देश करने में कतराये और इस अर्थलिप्सा राक्षसी ने प्रवचन कर्ता संसार से ही नैतिक मूल्यों को निगल लिया है।

मुद्रा राक्षस ने साक्षरों को राक्षस बना डाला। कथा प्रवचन कदर्थोपार्जन का साधन बन गया। साम्प्रतिक वक्ता-वक्त्रियाँ येन-केन प्रकारेण श्रीराम-कृष्ण कथा को माध्यम बनाकर भोली भाली जनता को दिग्भ्रान्त करके उससे एक सूत्रीय कार्यक्रम के आधार पर धन ऐंठने लगे और होड़ सी लगा दी कि कौन कितनी भीड़ इकठ्ठी कर सकता है, भले ही वह भेंड़ों की क्यों न हो ?

विदेशी चैनलों की मिली-भगत से भिन्न-भिन्न चैनलों पर आकर अद्यतन वक्ता समाज केवल अपसंस्कृति के प्रचार में ही व्यस्त हो गया। फूहड़पन सारहीन हँसाने वाले चुटकुले फिल्मों के गंदे-गंदे अश्लील गाने जैसे हथकंडे आज की प्रवचन-प्रवीणता के प्रमाण पत्र बन गए हैं। इन्हीं विडम्बनाओं से खिन्न होकर इस वानप्रस्थोन्मुख विद्वत्वरेण्य, सदाचार्य सच्छास्त्र निष्ठ चतुर लेख चितेरे ने जिन शास्त्रीय प्रामाणित सिद्धान्त विधाओं का चित्रण किया है। इसे निश्चित रूप से डॉ. रामाधार उपाध्याय को एक साथ प्रभु श्री सीतारामजी के कृपा प्रसाद की, ऋषियों के आशीर्वाद की और अस्मत्, परन्तु शास्त्र चूड़ान्त आचार्यों के मंगलाशासन संवाद की पात्रता प्राप्त हो चुकी है।

मैं इस निबंध के निर निरबंध समनुशीलन से इस शुभाशा के साथ, पूर्ण आश्वस्त हूँ कि इससे आगे आने वाली-प्रवाचक परंपरा सत्प्रेरणा लेकर सम्मार्गनिष्ठ होगी।

रामाधारः सदाधारः रामाधार सरस्वती।

राम रश्मि मदुन्मेषा, सारसीव शमस्यतु।।

इति मंगलामाशास्तु राघवीयो श्री चित्रकूट तुलसी पीठाधीश्वर **जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्वामी रामभद्राचार्यजी।**

श्री हरिः

श्री गणेशाय नमः

पूर्वाम्नाय-श्रीगोवर्द्धनमठ-पुरीपीठाधीश्वर

श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य

स्वामिनिश्चलानन्दसरस्वती

श्रीगोवर्द्धनमठ-पुरी 452001 (उड़ीसा)

निज सचिव-श्री राजीव मिश्रः, दूरभाष 06752

फोन : 231094, 231796

मोबा. 9437031716, 9437004794

क्रमांक- शिविर स्थल-पंजाब तिथिः 6-28-2063

श्री उपाध्यायजी!

स्नेह अभिनन्दन।

व्यासपीठ की आचार संहिता

ग्रन्थ लिखकर आपने सनातन परम्परा की रक्षा का अद्‌भुत प्रशस्त प्रयास किया है। अधिकार संक्रमण के इस विप्लवकारी युग में सनातन मान बिन्दुओं की रक्षा का यह प्रयास सराहनीय है।

निश्चलानन्द सरस्वती

अनन्त श्री विभूषित काशी पीठाधीश्वर

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

श्री हर्याचार्यजी

(श्रीअवधधाम)

संशय विनाशकारी होता है। सभी प्रकार के संशयों से विमुक्त होने हेतु संशय मुक्त शास्त्राध्यायी प्रमाणित आचार्यों को ही व्यासपीठ पर बिठाना चाहिये। "आचार्य डॉ. रामाधार उपाध्याय, विद्यावाचस्पति" ने व्यासपीठ की आचार संहिता पुस्तक लिखकर सत्य ही नहीं परम सत्य को प्रत्यक्ष किया है।

संभव है कि वर्तमान विचारधारा वाले विकासवादियों को यह उचित प्रतीत न हो, किन्तु ब्राह्मणेतर तथा स्त्रियाँ व्यासपीठ की पात्रता से सुनिश्चित पृथक है। "शास्त्र योनित्वात्" (ब्रह्मसूत्र) की दृष्टि से शास्त्रानुसार चलकर ही व्यक्ति संशयमुक्त हो सकता है।

जगद्गुरु रामानंदाचार्य हर्याचार्य

शास्त्रार्थ पंचानन
पं. प्रेमाचार्यजी शास्त्री
(विश्व पर्यटक)
श्री धाम 150 पुरानी
गुप्ता कॉलोनी, दिल्ली-90

"व्यासपीठ की आचार संहिता" ग्रंथ की पृष्ठभूमि को समझा। धर्माचरण संबंधी सामयिक समस्याओं के निराकरण के इस महनीय कार्य में आपकी जागरूकता शतमुख से प्रशंसनीय है। ब्राह्मणेतर व्यास तथा महिलाओं का व्यास पीठ पर बैठकर प्रवचन पुराणादि करना नितान्त अशास्त्रीय एवं अव्यावहारिक है, मैं शास्त्रीय दृष्टिकोण से ही इस कृत्य का पूर्ण विरोधी हूँ।

आपके इस ग्रंथ को देखकर मन प्रसन्न हुआ। आशा करता हूँ कि यह ग्रंथ पढ़कर समाज को यथार्थ निर्णय लेना चाहिये।

पं. प्रेमाचार्य शास्त्री
(शास्त्रार्थ पंचानन, दिल्ली)

महन्त श्रीरामजीदासजी ब्रह्मचारी

अध्यक्ष मण्डलेश्वर चित्रकूट धाम,

बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

आचार्य डॉ. रामाधार उपाध्याय विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित **''व्यासपीठ की आचार संहिता''** को देखा जो बात हमारे मन में ही कई दिन से चलती रही, उसका प्रत्यक्ष साकार रूप इस ग्रंथ में देखकर मन प्रसन्न हुआ। शास्त्रीयता आचारशीलता वैदिक धर्म के प्रति आस्था, मर्यादाशीलता, संत, महात्माओं के प्रति अतीव श्रद्धालुता और भगवत्कथा भगवन्नाम आचार्यजी की तीन पीढ़ियों से निरंतर है। मैंने इनके पितामह जो उच्चकोटि के संत थे, इनके पिताजी जो सिद्धांत की साधना की प्रत्यक्ष मूर्ति थे। उनको कथा भी सुनाता रहा हूँ। बहुत निकट से उनको पढ़ता भी रहा हूँ। और चौथी पीढ़ी के बालकों को वेदपाठ-सन्ध्या वन्दनादि देखकर मेरा इनको पूर्ण आशीर्वाद है कि ये संस्कृति के सिपाही बनकर, धर्मध्वजवाहक बनें।

रामजीदास ब्रह्मचारी

पं. मानस प्रपन्नाचार्य त्रिपाठी
रजवाड़ा, ललितपुर

आचार्य डॉ. रामाधार शास्त्री प्रणीत ग्रंथ अनेक पुष्ट प्रमाणों से परिपूर्ण शास्त्रीय सनातन सिद्धांत को अभिव्यक्त करता है। ''तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं गीतायाम्''

वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि, ब्रह्मसूत्राणि चैव हि।
समाधि भाषा व्यासस्य, प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।।

किसी भी विषय का प्रतिपादन प्रमाण के बिना कथमपि संभव नहीं विद्वान लेखक ने अपनी प्रज्ञा प्रतिभा शास्त्रज्ञान के माध्यम से उसे उस धरातल पर प्रतिष्ठत कर दिया जहां विरले ही सफल होते है,

अब्धिलंघित एव वानर भटैः किं त्वस्य गंभीरताम्।
आपाताल निमग्न पीवरतनुः जानाति मन्थाचलः।।

यदि समाज में परिव्यास विकृतियों दुष्प्रवृतियों धर्मविरोधी शक्तियों का समूलो च्छेदन नहीं किया गया तो आने वाली धार्मिक पीढ़ी **''किं करोमि क्व गच्छामि, को वेदानुद्धरिष्यति''** का प्रलाप करेगी तब यह कौन घोषणा करेगा कि-

मा विषीद वरारोहे, भट्टाचार्योऽस्मि भूतले (कुमारिलभट्ट)

अभिप्राय यह कि विद्वान आचार्यप्रवर डॉ. रामाधार शास्त्री का यह अप्रितम साहस श्लाघनीय ही नहीं अपितु आदरणीय अभिनंदनीय भी है। वैदिक काल सेपुराण काल तक के प्रबल प्रमाणों से परिपुष्ट यह अद्वितीय ग्रंथ अपने आप में कीर्तिमन्त है। मातृशक्ति को सर्वोच्च स्थान स्वतः प्राप्त होने करुणा ममता की धर्ममयी प्रेम की प्रतिमा सदा ही वन्दनीय हैं। उन्हें अधिकार से वंचित करना अक्षम्य अपराध है। सनातन संस्कृति की वे आधार शिला है, मर्यादा ही उनकी महिमा है युग के एक कुटिल दूषित प्रभाव ने जो उनकी गरिमा को गौरवान्वित के स्थान पर रौरव की विभीषिका में धकेला था उसी का परिहार परिष्कार इस ग्रंथ का सिद्धांत है। हम विद्वान लेखक के यशस्वी मनस्वी वर्चस्वी जीवन की कामना करते हुये प्रभु से प्रार्थी हैं कि इन्हें कृपाप्रसाद से कृतार्थ करते रहें।

इत्यलम्।

मानस मृगेन्द्र डॉ. बृजेश दीक्षित
(पी.एच.डी.)
मानस-भागवत प्रवक्ता (जबलपुर) म.प्र.

व्यासपीठ-रक्षण का शास्त्रीय सद्प्रयास

राष्ट्रीय जीवन में जो महत्व राष्ट्रध्वज का है, वही महत्व धर्मक्षेत्र में व्यासपीठ का है। जिस प्रकार दंडस्थित ध्वज प्रणम्य है, उसी प्रकार व्यासपीठ पर विराजित वेदशास्त्रविशुद्धिकृत विप्र भी प्रणम्य होता है। सामान्य वस्त्र जैसे राष्ट्रध्वज का सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता, वैसे ही वेदशास्त्र-निषिद्ध व्यक्ति भी व्यास-पीठ पर सम्मान योग्य नहीं हैं। किन्तु कलिमल के कारण विगत पंच-दशकों में ऐसे अपात्रों की व्यासपीठ पर बाढ़ सी आ गयी है। जिसके फलस्वरूप न केवल मनगढंत अशास्त्रीय व्याख्याएँ हो रही है, प्रत्युत् व्यासपीठ आत्मरंजन के स्थान पर मनोरंजन के रंगमंच बनते जा रहे हैं। संचार-माध्यमों से उत्थित तथाकथित अशास्त्रीय व्यास तो फिल्मी गीतों अनावश्यक नृत्यों, फूहड़ चुटकलों से रामायण, भागवत के प्रसंगों की पुष्टि कर दिन-प्रतिदिन मूलकथा को विकृत एवं व्यासपीठ को गरिमाहीन बना रहे है। नीर-क्षीर विवेकी हंस के पीठ पर बैठे इन मति-मलिन-दीन बकों को कौन समझाए कि ये रंगमंच नहीं व्यासपीठ है। "बकहिं सराहइ मानि मराली" की उक्ति अनुसार भोले श्रद्धालु-श्रोता, उन बकों के अशास्त्रीय वाक्यों को ही ब्रह्मवाक्य मान लेते है। कुछ कुतर्क करते है कि जब काकभुशुण्डि कथा कह सकते है तो हम क्यों नहीं किन्तु उन कलिमल ग्रसित प्राणियों को यह विदित नहीं है। भुशुण्डिजी अंडज काक नहीं है, वे मूलतः पिंडज ब्राह्मण तथा शापित काक हैं। शाप भी किसी अपराध पर नहीं, वरन् भगवद्‌विषयक प्रश्न की सघन आवृति के

कारण लगा था। अतः काकर्षि से आज के काक बक तुलना न करें। धर्म सम्राट स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज बहु तंत्रवार्तिक का एक श्लोक उद्धत करते थे। कि-

मतयो यत्र गच्छन्ति, तत्र गच्छन्ति वानराः।

शास्त्राणि यत्र गच्छन्ति, तत्र गच्छन्ति ते नराः।।

अर्थात् जो केवल मति का विलास करते है, वह वस्तुतः वानर बुद्धि का ही विलास करते है। किन्तु जो शास्त्र सम्मत् व्याख्यान करते है, वही वस्तुतः नर-बुद्धि का विलास है। शास्त्र सम्मत्ता के अंतर्गत व्यासपीठ-का अधिकार अनधिकार भी आता है। यदि अनधिकारी धर्मोपदेश करेंगे तो उक्त श्लोक अनुसार **''बन्दर के हाथ में क्षुर''** की कहावत चरितार्थ होगी। गत प्रयाग-महाकुंभ (2001) में जगद्गुरु रामानंदाचार्य श्री चित्रकूट तुलसी पीठाधीश्वर स्वामी श्री रामभद्राचार्यजी से एक श्रोता ने प्रश्न किया था कि क्या नारियों को शास्त्र व्यासपीठ का अधिकार देता है, तब आचार्य प्रवर ने कहा था कि वेदशास्त्र विशुद्धिकृत विप्र तथा आचार्य के अतिरिक्त व्यासपीठ का किसी को अधिकार नहीं है। किन्तु आज जो व्यासपीठ की दुर्दशा हो रही है, उसके मूल में वेदशास्त्र अशुद्धिकृत ब्राह्मणेतर, यवन-म्लेच्छ तथा रजोधर्मिणी नारियाँ हैं। जबसे इन मन-क्रम-वचन-लवारों ने व्यासपीठ पर अतिक्रमण किया है तभी तो मेरे एतद्विषयक प्रवचन के उपरान्त एक बार स्वीकार भी किया था कि भैया आज रजोदर्शन के पश्चात् भी हमें पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम को लोकलाज के कारण पूर्ण करना पड़ता है। कभी-कभी तो श्री हनुमानजी के समक्ष लगे व्यासपीठ पर ऐसी स्थिति आ जाती है, तब हमें अत्यंत भय एवं ग्लानि भी

होती है। किंतु क्या करें? प्रवचन तो करना ही पड़ता है। अब सुधी पाठक ही निर्णय करें, क्या अब ऐसी स्थिति में व्यास-पीठ प्रणम्य रहेगा? यदि कोई नैष्ठिक साधक श्रोता प्रणाम भी कर लेतो उसकी साधना एवं तपस्या का क्या होगा क्या ऐसे में यथार्थ धर्म की व्याख्या हो सकेगी? इन सभी यक्ष प्रश्नों का शास्त्रीय उत्तर देने हेतु, देश के गण्यमान्य परमनैष्ठिक शास्त्रीय विद्वानों में से एक, वेद शास्त्र-अष्टादश पुराणों-रामायण-महाभारत तथा श्री रामचरित मानस सहित गोस्वामीजी के संपूर्ण साहित्य के प्रशस्त हस्ताक्षर आचार्य डॉ. रामाधारजी उपाध्याय ने व्यासपीठ को आचार संहिता नामक ग्रंथ का प्रणयन किया है। इसमें आचार्य प्रवर ने अपनी ओर से कुछ नहीं जोड़ा। उन्होंने तो शास्त्राणि यत्र गच्छन्ति, तत्र गच्छन्ति ते नरा:।। के अनुसार आर्षवाङ्मय में यत्र-तत्र विकीर्ण एतद् सद्प्रयास किया हैं, जिससे व्यासपीठ पुन: वेदशास्त्र विशुद्धिकृत विप्र से सुशोभित हो, पूर्व गरिमा को प्राप्त कर सके। यद्यपि क्वचित कुत्सित प्रच्छन्न-प्रतीच्य कुविचारों से कुपोषित कुमार्गी, इस सद्प्रयास को आधुनिक उच्श्रृंखल-प्रवाह में गतिरोध निरूपित करेंगे। किन्तु प्रतीच्य-विषाणुओं से संक्रमित ज्वर की उद्दामता को कटु-निम्ब से प्रतिरोधित कर समाज को स्वस्थ बनाना सद्गुरु वैद्य या आचार्य का पुनीत कर्तव्य का समुचित निर्वहन करते हुए, इस क्रांतिकारी ग्रंथ का प्रणयन किया है। निश्चित रूप से उनकी यह कृति व्यासपीठ की शास्त्रीय मर्यादा को पुनर्स्थापित करने में अमोघ श्री रामबाण सिद्ध होगी।

शुभकामनाओं सहित।

श्री गणेशाय नमः

अध्यात्म-क्षेत्र की कुछ आवश्यक अर्हताएँ होती हैं। उनको दृष्टिगत रखते हुये व्यक्ति पूर्ण सफल हो पाता है। यदि अपने स्वकीय स्वार्थ अथवा मन:रंजनार्थ वह किञ्चित् परिवर्तन करता है तो उसकी आध्यात्मिकता स्वतः ही भग्न हो जाती है। किं वा वहां तक पहुंच ही नहीं पाता। आध्यात्मिक यात्रा का प्रथम-सोपान या शुभारंभ व्यास पीठ है। वहीं से व्यक्ति जिज्ञासु से मुमुक्षु पर्यन्त यात्रा को पार कर परमानन्द में प्रविष्ट होता हुआ मानव जीवन की संपूर्ण सार्थकता को सिद्धकर पाता है। यथा शिक्षण की सम्पूर्ण प्रविधियां पूर्ण नहीं होगी तो शिक्षण अपूर्ण-असफल-अवैधानिक-असंगत और विचिकित्सित हो जाता है, तथैव व्यक्ति की आध्यात्मिक आधार शिला भी बड़ी विचारणीय है। हम इतिहास का अवलोकन करें तो स्पष्ट ही भासित होता है कि जिन लोगों ने महापुरुषों, सदाचारियों-साधुओं-मनीषियों और पारग विद्वानों की सन्निधि का आश्रय लिया उनको सफलता सुनिश्चित हुई वे अध्यात्म शिखर पर ही नहीं अपितु उन्होंने समाज को सुस्पष्ट यथार्थ दिशा देकर कृतार्थ भी किया।

आज यह निर्णय ही बड़ा गंभीर हो गया है कि **''तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया''** (गीता) किसके पास अपनी समस्याओं का समाधान, आत्मज्ञान का आनंद, भगवान् की भक्ति, मानवदेह की महनीय सार्थकता और जीवन का चरमोद्देश्य प्राप्त करें। दिग्भ्रान्त-श्रान्त क्लान्त संपूर्ण जीवन यात्रा निर्णयों में ही पूर्ण होती है। गन्तव्य का ही निर्णय नहीं हो पाता, यात्रा का शुभारंभ तो पश्चात् का प्रश्न है। किसी भी लोक-परलोक के यथार्थ तथ्य का बोध तभी होता है, जब उसका प्रमाण शास्त्र सम्मत हो। यदि शास्त्र सम्मत हमारे जीवन की कोई भी विधि प्रातः से शयन पर्यन्त की ही क्यों न हो, उसका यथार्थ निर्णयाधिकार शास्त्र के ही पास होता है। भगवन् श्री कृष्ण ने अर्जुन को 16 अध्याय तक

कितना ज्ञानोपदेश किया, किन्तु अन्त में उपसंहारोन्मुख कह रहे हैं कि शास्त्र ही विधि-निषेध का निर्णय करता है। (क्या करें क्या न करें) अतः तू शास्त्रनिष्ठ हो।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।

(गीता 16/24)

अर्थात् भगवान् के कथन का अभिप्राय है कि यदि तुम शास्त्र त्याग कर मनः कल्पित आचरण करोगे तो तुमको लोक में सुख तथा परलोक में शान्ति परमगति प्राप्त नहीं हो सकती। जीवन के किसी क्षेत्र में सफल हो जाना पृथक तथ्य है, किन्तु शास्त्र विधि से करते हुए सफल होना ही सत्य तथ्य है। यथा चोरी से वस्त्र-भोजन भवन मिल जाता है। स्वकीय शास्त्रोक्त श्रमनिष्ठ मार्ग से भी जीवन प्रयोगी-भवन वाहन मिलते हैं, परन्तु दोनों उपलब्धियों में वही भेद है जो स्वर्ग नरक में अंतर है। भगवान कहते हैं कि यहां सुख हो सकता है, किन्तु वह आत्मतोष नहीं देगा। परलोक में तो सुनिश्चित ही दुर्गति ही है। अतः शास्त्रानुमोदित आचरण करो-

य शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

गीता 16/23

भक्ति भी शास्त्र सम्मत- पुनः यदि सोचें कि ज्ञान-कर्म में शास्त्र की आवश्यकता है, परंतु भक्ति तो भावप्रधान है, उसमें यह शास्त्र विधि-निषेध अनावश्यक है। ऐसी बात नहीं है, भक्ति में भी ज्ञानजन्य भक्ति से ही भगवान् की संतुष्टि होती है, अज्ञानजन्य भक्ति से आंशिक लाभ तो हो सकता है, पर पूर्ण लाभ संभव नहीं है- भगवान् स्वयं अपने श्री मुख से कह रहे हैं।

श्रुतिस्मृति ममेवाज्ञे यस्तु उल्लंध्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी ममद्रोही मद्भक्तोपि न मे प्रिय।।

शास्त्राज्ञा का त्याग करने वाला मेरी अवज्ञा या आज्ञाच्छदेन कर रहा है। वह भक्त भी हो तो भी मुझे प्रिय नहीं है। इसलिये भगवान् श्रीराम ने कहा मुझे प्रिय तो वही है जो मेरी आज्ञा स्वीकार करे- शिरोधार्य करे-

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन माने जोई।।
(मानस 7/44/5)

यह भगवान् की प्रियता प्राप्ति हेतु उनकी आज्ञा क्या है? श्री रामजी तो किसी प्रजाजन सेवकगण को आज्ञा ही नहीं कर रहे हैं- **प्रभु मुख कमल विलोकल रहहीं। कबहुँ कृपालु हमहिं कछु कहीं।।** (उत्तरकाण्ड)श्री रामजी की प्रत्यक्षाज्ञा नहीं होती। उनकी पूर्वाज्ञा शास्त्र पुराण है। उनके ही अनुसार हम को जीवन का प्रत्येक बिन्दु निश्चित करना है। यदि भक्ति शास्त्र सम्मत-धर्मसम्मत-आचार्य सम्मत नहीं करोगें तो उस भक्ति से भगवत्प्राप्ति न होकर उत्पात ही होगा। कहा गया है-

श्रुति स्मृति पुराणादि पाञ्चरात्र विधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्ति रुत्पातायैव केवलम्।।

वह भक्ति भी उपद्रवकारिणी होती है। जैसे नाम जप से निश्चित लाभ होता है, पर आज कितने ही नाम जापक भटक रहे हैं, क्योंकि वे दश नामापराध कर रहे हैं। उन दश अपराधों से बचकर नाम जप करने वालों पर नाम भगवान् की सद्यः कृपा हो जाती है।

अभिप्राय यह है कि दैनिक गतिविधि भी हमारी शास्त्र ही नियमित और निश्चित करते हैं तब जहाँ से धर्मोपदेश प्राप्त हो रहा है, वह विधि भी सम्यक शास्त्रीय होना ही चाहिये, तभी हमको संपूर्ण लाभ, आराध्य, जीवनोद्देश्य, लक्ष्यलाभ, पारलौकिक पुण्यलाभ, सद शिक्षा और परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। हमारी भारतीय संस्कृति में व्यासपीठ (आचार्य

पीठ) से यह पुनीत प्रसाद सभी को वितरित होता रहा है। तब यह हृदयंगम करना है कि व्यासपीठ की मर्यादा का अनुपालन अनिवार्य है। अन्यथा हमको वह उपलब्धि नहीं हो सकती जो होना चाहिये।

व्यासपीठ बाजार पीठ- आज वर्तमान में यह विलक्षण विडम्बना है कि व्यासपीठ बाजार पीठ हो गया है। जिस प्रकार रामलीला-रासलीलामें यहाँ तक कि सिनेमा में जिस प्रकार कला-गला आकृति को महत्व दिया जाता है, ठीक उसी प्रकार व्यासपीठ-प्रवचन पीठ की दुर्गति हो रही है। इसमें भी शिक्षा-सदाचार-सद्विचार स्वाध्याय-साधना को महत्व न देते हुए चारों वर्णों की बात तो दूर वर्णेतर अर्थात् चारों वर्णों में चारों आश्रमों में जो गण्य नहीं है, वह भी शीर्षस्थ होकर इसका प्रतिपादन कर रहे हैं। क्रमशः अब अनध्यायी-आचरण विहीन को ही महत्व दिया जा रहा है। यह पद त्याग, तपस्या-तितिक्षा से संयुक्त विवक्षा युक्त था। पर अब यह परिवर्तन हो गया है आज यह व्यवसाय की दृष्टि से बढ़ता जा रहा है। **''बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं''** की युक्ति को चरितार्थ किया जा रहा है। विसंगति यह है कि मद्यप-चरित्र भ्रष्ट, दुर्व्यसनी, वर्ण-विहीन और अशास्त्रीयजनों का प्रवेश व्यासपीठ पर हो गया है। यह ईर्ष्या-अमर्ष का विषय नहीं शास्त्र को यथारूप रखने का चिन्तन है। मल्हारगढ़ (गुना) म.प्र. में महामण्डलेश्वर श्री महन्त राधिकादासजी बहुत विराट्-यज्ञ-भागवत-पुराण तथा श्रीराम चरित मानस के विराट सम्मेलन कराते हैं। लगभग एक दशक से यह शरीर भी वहाँ सेवा देता है। वहाँ बीना वासी शतायु संपन्न श्रद्धेय पं. श्री पाराशरजी से भेंट हुई किसी प्रसंग में उन्होंने मुझसे कहा कि अब मैं व्यासपीठ को प्रणाम नहीं करता क्यों कि यह धर्मोपदेश-कथोपदेश का वह पीठ है जिस पर शिष्य भी कथा कहता हो तो गुरु को भी नमन करने का विधान है। परंतु मैं नहीं करता तब मैंने पूछा क्यों नहीं करते? वे बोले कि अब यह व्यासपीठ नहीं धर्म की ओट में बाजार पीठ हो गया है। यहाँ अनधिकारी, अनध्यायी,

अशिक्षित, अप्रमाणित, अभगवद्-भक्त, विजातीय, विचिकित्सित तथा अप्रणम्य लोग बैठे रहते हैं। यह चिन्ता का विषय है। श्रद्धाजगत् में श्रद्धा की हानि हो रही है यही धर्म हानि है।

आत्मरंजन या मनोरंजन- प्रश्न यह उठता है कि दुर्व्यसनी-अशिक्षित, अशास्त्रीय जन तथा रजस्वलावस्था दोष संपन्ना। कुमारिकाओं को ही लोग श्रवण करना चाहते हैं, उन्हीं के आमंत्रण का बहुमत है, ऐसी परिस्थिति में वही सभी कुछ करना समीचीन तथा अनिवार्य प्रतीत होता है जो शास्त्र विहित नहीं है। इसी प्रश्न के समाधानार्थ निवेदन किया जा रहा है कि कलियुग की कृपा से लोग भी अब आत्मरञ्जन के नहीं मनोरंजन के पिपासु अधिक है। मनोरंजन की, हास्य की सम्प्रति पराकाष्ठा का युग चल रहा है। व्यासपीठ-सत्संग-वेदोपदेश-मानस-भागवत कथोपदेश भी इन अविवेकीजनों के कारण हास्यास्पद ही होता जा रहा है। आज के 30-40 वर्ष पूर्व धर्मसम्राट स्वामी करपात्रीजी महाराज के वेदान्तोपदेश-गूढ़ार्थों से युक्त भागवतादि को श्रवण कर अपढ़ भी आत्मरंजन करता था। अब शनैः शनैः गूढ़ार्थ तो क्या यथार्थ से हटकर वक्ता की तथैव यथार्थ से हटकर श्रोता की प्रवृत्ति बनती जा रही है। तब व्यासगण वेदमंत्रों से भावों की, शास्त्रों से विचारों की पुष्टि करते थे। अब सिनेमा के तथा स्वरचित अप्रामाणित तथ्यों से दृष्टान्तों से तत्व की संपुष्टि करने की दुरभिसंधि चल पड़ी है।

हम धर्म के पीठ को धर्म से नहीं चला पा रहे हैं, सत्य न्याय से निष्ठा से नहीं चला रहे हैं, यह आचार्यों के प्रति, भगवान् वेद व्यास, महर्षि वाल्मीकि पूज्य गोस्वामीजी के प्रति अन्याय कर रहे हैं। हम धर्म से किसी

कार्य को नहीं करेंगे तो परिणति क्या होगी। महर्षि वाल्मीकि ने लिखा कि श्रीराम राज्य में किसी पिता ने अपने समक्ष अपने की मृत्यु नहीं देखी क्यों?

"न पुत्र मरणं केचित् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।।"

वा.रा. 1/1/91

कहीं लुटेरे आतंकी अनर्थकारी-पुत्रों की अन्त्येष्टि करने वाले लोग नहीं थे क्योंकि सभी स्वधर्म का पालन करते थे **"स्वे-स्वे धर्मे" विर्दस्युरभवल्लो को नानर्थ कश्चिद स्पर्शत् न च स्म बृद्धबालानां प्रेत कार्याणि कुर्वते।।** वा.रा. 6/128/99

श्री गोस्वामीजी ने भी लिखा-

वरणाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिभय शोकन रोग।।

इसलिए धर्म व्याख्या में धर्मपालन अनिवार्य है अतः सर्वत्र अमंगलकारिणी कथा वक्ता-श्रोता का अमंगल भी कर देती है क्योंकि अधर्म की परिणति ही अमंगल है। इस प्रत्यवाय से बचने के लिए हम सत्यता से शास्त्राज्ञा पर विचार करें-

धर्मोपदेश के अधिकारी - वेदों में पवित्र सदाचरी विद्वान् आचार्य ब्राह्मण को ही व्यासासन पर बैठने धर्मोपदेश करने का अधिकार दिया **"विद्या ह वै ब्राह्मणामाजगाम"** मनुस्मृति में भी इसी का समर्थन किया गया **"विद्या ब्राह्मणमित्याह"** 2/114 वेदों में पुनः **"आब्राह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्"** अर्थर्ववेद में भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि की गई **"यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह"** इस उपदेशाधिकार में ब्राह्मण को ही नियुक्त किया गया महाभारत में कहा गया कि ब्राह्मण योनि

में जन्म लेने वाला ही भगवत्तत्व के प्रतिपादन का धर्मोपदेश का अधिकारी हैं। अतः अधिकृत होने से वे देवताओं की निन्दा के पात्र नहीं बनेंगे। यदि ब्राह्मणेतर इस प्रकार का दुस्साहस करें तो सुनिश्चित ही वे अधम लोकों की यात्रा हेतु तत्पर रहें-

ब्राह्मी हि योनिमापन्नः सुगुह्यमपियो वदेत्।
न तेन गर्ह्यो देवानां तस्मादेतद् ब्रवीमि ते।।

महाभारत उद्योग पर्व 4116

मनुजी ने ब्राह्मणेतर का स्पष्ट निषेध किया है

"प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्तेषां नेतराविति"

मनु. निश्चय।। 10 ।।

विद्या की अधिष्ठात्री देवी ब्राह्मण के निकट आकर कहती है, मैं आपका कोष हूँ मेरी रक्षा करो इन अयोग्यों से बचाओ।

विद्याब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्षमाम्
असूकाय मां मादास्तथास्यां वीर्यवत्तमा।।

मनुस्मृति 2/114

इतिहास पुराण के अध्ययन के बिना तो वेद का अर्थ भी संभव नहीं होता। अल्पज्ञ अनभिज्ञ-अपढ़ व्यक्ति के व्यास पीठ पर चढ़ते ही सभी शास्त्र भयभीत हो जाते हैं कि यह अवश्य हमारी हत्या करेगा।

इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्।
विभेत्यल्पश्रुताद् वेदोमामयं प्रहरिष्यति।

महाभारत 1/164

व्यास की योग्यता- व्यास का एक विशिष्ट पद है उसके लक्षण पुराणों में दिये गये हैं जो सम्यक् प्रकार से शास्त्र का ज्ञाता हो जन्मना ब्राह्मण हो, ग्रन्थार्थ में प्रवीण हो वही व्यासपीठ का अधिकारी है-

बुध्यमानः सदाहार्थं ग्रन्थार्थ कृत्यमेव च।
य एवं कथयेत् सम्यक् स विप्रो व्यास उच्यते।।

(भविष्य पु. मध्यमपर्व 3/12)

आज की भ्रामक व्याख्याएँ- यदि ग्रन्थार्थ करने में प्रवीणता नहीं है तो निश्चित ही अनर्थ होगा। यथा आजकल व्यासगण रावण नाम वीर वरि बंडा का अर्थ करते हैं कि रावण वीर तो था परन्तु बंडा वीर था। अर्थात् बंडा का अर्थ अर्द्धवीर से लगाते हैं। फिर मानसजी में ही श्रीरामजी को वरिवंड शब्द आया तब इसका अर्थ वे क्या लगायेंगे? वरिबंड का तात्पर्य प्रचण्ड से है। द्वितीयतः कुछ ऐसी कपोल कल्पित कथाएँ जो श्रुति-नीति मर्यादा के पूर्ण विरुद्ध है, कही जाती हैं यथा जब श्रीराम विवाहित होकर चारों भाई अवधपुर लौटे, तब लक्ष्मणजी कौशल्या माता के पास दुखी मन से पहुँचे, माता कौशल्या ने पूछा कि बेटा दुःखी क्यों हो रहे हो। लक्ष्मणजी ने कहा कि अब भैया के दोनों चरणों की सेवा भाभी करेंगी, मैं सेवा कैसे करूँ तब माता ने कहा कि होली पर भाभी से रंग से खेलना पिचकारी गुलाल करना, तब उस होली का फगुआ नेग मांगना उसमें तुम एक चरण की सेवा माँग लेना। लक्ष्मणजी ने जानकी जी से होली खेली तथा फगुआ के नेग में एक पैर की सेवा माँग ली। यह कथाओं की मर्यादा है? जिस भारतीय संस्कृति में ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी को जन्मदात्री माता के तुल्य माना जाता है, उससे होली खेली जाएगी और वह भी माता कौशल्या कहेंगी? क्या संदेश, क्या धर्मोपदेश, क्या चरित्रोपदेश पहुँचेगा श्रद्धालुओं तक। जो लक्ष्मण श्रीराम के पूछने पर कहते है कि भैया आजतक मैंने भाभी माँ का कान का, कण्ठका, बाहुओं का, कटिका आभूषण ही नहीं देखा तो पहिचानूँगा कैसे? मैं तो मात्र श्री माता को प्रणाम करता था उनके चरण के नूपुर ही पहिचान सकता हूँ-

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।

(वाल्मीकि रा. 4/27/22)

इस प्रकार की अनर्थकारी कथा जो देवर-भाभी के माता-पुत्र के पावन संबंध को कलुषित कर रही है। आज के उन्मत्त अविवेकी-दिशाहीन देवरों को क्या शिक्षा देगी? क्या अंतःकरण परिवर्तित करेगी, तथा श्रीरामजी की मर्यादा का क्या प्रतिष्ठापन होगा एतावता सुयोग्य सुभिज्ञ शास्त्राध्यायी व्यास के मुख से ही कथा श्रवण कराने का अधिकार शास्त्र ने दिया।

पद्मपुराण का प्रमाण– इसी प्रकार पद्म पुराण में वर्णन आया कि ब्राह्मण विरक्त, वैष्णव और वेदशास्त्र का ज्ञाता हो जिसका आचरण परम पवित्र हो, सिद्धान्तों को पावन दृष्टान्तों के माध्यम से समझाने की कला में प्रवीण हो निर्लोभी हो वही वक्ता की अर्हता प्राप्त कर सकता है-

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेद शास्त्र विशुद्धकृत्।
दृष्टान्त कुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनस्पृहः।।

पद्म पु. उत्तरखंड 6/20

भगवत्कथा में अन्यथा कथा का फल– सिद्धान्तों की गौणता न हो जावे अन्यथा दृष्टान्त प्रमुख हो जावे लौकिक प्रविष्टियाँ भगवत्कथा में अति हानिकर हैं। श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध में नारदजी ने युधिष्ठिर को बताया कि "पूर्व जन्म मैं श्रेष्ठ गंधर्व रहा, देवों में भी मेरा सम्मान था।" एक बार देवताओं के यहां ज्ञानसत्र था, उसमें बड़े-बड़े प्रजापति आये थे। वहाँ भगवान् की लीलाओं को गायन था उस संत समाज में भी मैं भगवतकथा छोड़कर स्त्रियों के साथ लौकिक गीतों को गाने लगा। तभी मुझे शापित होना पड़ा और परिणामतः शूद्र योनि में मेरा जन्म हुआ। यहाँ नारदजी से पूर्व जन्म में दो अपराध एक साथ हुए। एक तो भगवत कथा

में लोक गीत तथा द्वितीय स्त्री का साथ। आज के फिल्मी गाने वाले वक्ताओं का तथा स्त्री सन्निधि में गाने वालों को अपने भविष्य को समझना चाहिये-

अहं च गायंस्तद्विद्वान् स्त्री भिः परिवृतोगतः।
ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा।।
याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्ट श्रीः कृतहेलनः।।

7/15/72

तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्म वादिनाम्।।

7/15/73

पद्मपुराण का द्वितीय प्रमाण - व्यास के लिए अन्य अर्हताओं को पद्मपुराण में संकेतित किया गया।

अनेक धर्म विभ्रान्ताः स्त्रैणः पाखण्डवादिनः।
शुकशास्त्र कथोच्चारे त्याज्यास्ते, यदि पण्डिताः।।

पद्म पु. 6/21

अनेक धर्मों से जिसका चित्त विभ्रान्त हो रहा हो। स्वकीय धर्म तथा धर्म निष्ठा ही जिसकी परिपक्व न हो। स्त्रियों में जिसका चित्त विशेष संलग्न रहता हो जो पाखण्डवादी हो। पाखण्ड तथा प्रदर्शन, दंभ यह सभी वर्जित है।

रावण आचार्य तथा व्यास नहीं बना- रावण तो विशिष्टतम विद्वान रहा, किन्तु वह बड़ा विवेकी रहा होगा। उसने कहीं व्यासासन पर चढ़ने का दुस्साहस नहीं किया। अथवा यो कहें कि उससे किसी ने कथा सुनने का निर्णय ही नहीं लिया। कथा रावण से क्या श्रवण करेंगे।

जन्मना ब्राह्मण, अति विद्वान फिर भी कथा क्यों श्रवण नहीं की उसका यही अभिप्राय है कि उपरोक्त गुण उसमें संपूर्ण निहित थे। धर्मभ्रान्त-स्त्रैण पाखण्डादि के कारण उसको आचार्य पद नहीं दिया गया। कुछ दाक्षिणात्य लोकगीतों में गाया जाता है कि रावण को रामेश्वर-प्रतिष्ठा में रामजी ने आचार्य बनाया था। यह कथा रावण भक्तों ने गढ़ ली होगी। किन्तु पुराणों-रामायणों में ऐसे प्रमाण अप्राप्त हैं। यह प्रतिष्ठा आचार्यों-ऋषियों के द्वारा सम्पन्न हुई थी। जिससे अगस्त्यजी आचार्य थे-

मुनयोऽभ्यागता द्रष्टुं दण्डकारण्य वासिनः।
अगस्त्यं ते पुरस्कृत्य तुष्टु मैथिली प्रतिम्

स्कन्द पु. 44/62

मुनिभिः सहितः प्रीत्या कृत्कौतुक मंगलः।
ज्येष्ठे मासे सितेपक्षे दशम्यां बुध हस्तयो।।

स्कन्द पु. 45/7

रावण को श्रीरामजी आचार्य बनावें, यह कदापि संभव नहीं है व्यास की, आचार्य की प्रथम योग्यता है कि वह आचारवान् होवे।

आचिनोति च शास्त्राणि आचारे स्थापयत्यपि।
स्वयं आचरते यस्तु तमाचार्य प्रचक्षते।।

रावण तो शास्त्राध्यायी रहा, किन्तु इन आचरणों को अपने आचार में नहीं उतार सका। अतः वह आचार्य और व्यास की पात्रता के योग्य ही नहीं था। फिर जिन्होंने शास्त्र शब्द का अभिप्राय ही नहीं जाना वे स्वकीय उदरपोषणार्थ व्यासपीठ को कलंकित करने के लिए उतर पड़ते हैं। सुनिश्चित वे दयनीय तथा ''किंकर कंचन कोह काम के'' हैं।

ऋग्वेद का प्रमाण- ऋग्वेद में भी उल्लेख है कि धर्मोपदेश सात महापापों से रहित होना चाहिये-चोरी, परस्त्रीगमन, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, मद्यपान, दुष्कृतकर्म की पुनरावृत्ति, पाप छिपा कर मिथ्या प्रदर्शन

"सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तामामेकामिदभ्यु हुरोगात्।।"

ऋग्वेद 10/5/6

इन सप्त महापातकों से विमुक्त कोटि को धन्य धन्य करता है। उसके दर्शन करने मात्र से ही श्रोत समाज कृतार्थ और पुण्यवान् हो जाता है, फिर श्रवण से तो कहना ही क्या?

व्यास की परिभाषा करते हुए कहा है कि वह शान्त तत्ववेत्ता, सदाचारी, ग्रन्थार्थभिज्ञ, रसभावादिका ज्ञाता हो वह व्यासपीठ का अधिकारी है-

विस्पष्टमद्भुतं शान्तं रसभाव समन्वितम्।
कलस्वर समायुक्तं स्पष्टाक्षर पदं तथा।।
बुध्यमानः सदर्थं वै ग्रन्थार्थ एवं चादयेत्।
य एवं वाचयेद् ब्रह्मन् स विज्ञो व्यास उच्चते।।

(व्यास लिखित तिथ्यादि तत्त्वम्)

व्यासजी के व्यास पीठस्थ शिष्य- व्यासजी के शिष्य भी सभी विप्रकुलोद्भूत तथा परम चरित्रवान् थे जिनके द्वारा व्यास पीठ चलती रही है। शुकदेव, जैमिनी, पैल, सुमन्तु, वैशम्पायन और रोमहर्षण अर्थात् सूतजी थे। सूतजी भी ब्राह्मण वंशीय थे इसका प्रमाण मार्कण्डेय पुराण में प्राप्त है। जिन सूत का बलरामजी से भागवत में विवाद हुआ यह सूत दूसरे हैं। व्यासपीठ पर विशुद्ध ब्राह्मण की प्रतिष्ठा में शास्त्रों ने सर्वविध शुद्धि तथा सिद्धि बताई है। ब्राह्मण समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले चलते-फिरते बिना जल के ही तीर्थ हैं। मलिन जन उनके वचन श्रवण मात्र से ही शुद्ध हो जाते हैं, अनुकरण की तो बात ही पृथक है।

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्जलं सार्वकामिकम्।
तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः।।

शातातप स्मृति 1/30

व्यासपीठ को प्रणाम का फल-

व्यासपीठ पर बैठे हुए ब्राह्मण को देखकर जो उस पीठ को प्रणाम करते हैं, उनको अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

प्रणम्य शिरसा धार्य्यमग्निष्टोम फलं लभेत्।

शातातप स्मृति 1/29

ब्राह्मण जिन बातों को कहते हैं, उन सदाचारी, शास्त्र सम्पन्न पावन ब्राह्मणों की वाणी का देवता भी अभिनन्दन करते हैं।

उनको पूर्ण भी करते हैं।

ब्राह्मण यानि भाषन्ते तानि देवताः
सर्वदेवमयो विप्रा न तद्वचनमन्य था।।

शाताताप स्मृति 1/27

ब्राह्मणेतर व्यास की फलश्रुति-

ब्राह्मण के इतर किसी के भी मुख से धर्मोपदेश श्रवण करना, उसको दान देना, ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि को छोड़कर भस्म में आहुति देना। अर्थात् वह निष्फल ही है।

ज्वलन्तमग्नि मुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते।।

व्यास स्मृति 4/35

शास्त्रकारों ने कह दिया कि ब्राह्मण के अतिक्रमण करने से (शास्त्र-दान-दक्षिणा-पूजा में अन्य जाति को अधिकृत करने से) उत्तम कुल भी अपने कुल से ही पतित हो जाता है

कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणाति क्रमेण च

(व्यास स्मृति 4/34)

पुराण वक्ता सूतजी ब्राह्मण थे, उनका वध करने पर बलरामजी को ब्रह्म हत्या लग गई थी,

आत्मानं चावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिव कुत्सितम्।।

मार्कण्डेय पु. 6/33

यहाँ ब्रह्मघ्न शब्द से ब्राह्मण ही संकेतित हैं।

पुराणेतिहास की कथा में अधिकृत सूत के पूर्वज भी बृहस्पति ही हैं। महाराज पृथु के ऐन्द्रसत्र में देवगुरु बृहस्पति संबंधी हवि का देवराज इन्द्र हवि से प्रमादवश साङ्कर्य हुआ। जिसके फलस्वरूप आदिसूत का अग्निकुण्ड से प्रादुर्भाव हुआ। ब्राह्मणों द्वारा उनको पुराणेतिहास में अधिकृत किया गया-

ऐन्द्र सत्रे प्रवृत्ते तु ग्रहयुक्ते बृहस्पतौ।

तमेवेन्द्रं बार्हस्पत्ये तत्र सूतो व्यजायत।।

मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षेत्रोपजीविनः।

पुराणेस्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणैरिह।।

(पद्मपुराण सृष्टिखण्ड 1/33-35)

ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः।

जुहावेन्द्राय देवाय ततः सूतो व्यजायत।।

(वायुपुराण प्रक्रिया 1/33-36)

अब यदि यह माना जावे कि इन्द्र हवि के कारण सूत में क्षत्रियत्व है, तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि महाभारत के अनुसार इन्द्र भी ब्रह्मर्षि कश्यप तथा अदिति से उत्पन्न हैं। अतः जन्मना इन्द्र ब्राह्मण हैं। कर्मणा क्षत्रिय हैं। अतः आदि सूत की परम्परा से ब्राह्मणत्व प्रधान है।

कहीं-कहीं संकल्प मात्र से वर्ण में व्यत्यास होता है। ब्रह्माजी के योगबल से स्वायम्भुव मनु केवल ब्रह्मर्षियों के संकल्प से ही क्षत्रिय माने गये। अग्निकुण्ड समुद्भूत होने से धृष्टद्युम्न मूलत: ब्राह्मण होने पर भी द्रुपद की भावना के अनुरूप क्षत्रिय माने गये और यज्ञवेदी समुत्पन्ना द्रौपदी उनकी बहिन मानी गई। अत: यह संकल्प भी महापुरुषों की भावना का ही है। अतएव सूतजी भी ब्राह्मण ही थे। उनको व्यासत्व अधिकार भी दिया गया था। उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि में ही विदुरजी महाभारत में नीति मार्ग धृतराष्ट्र को समझाते हैं। किन्तु धृतराष्ट्र ने कुछ ऐसे प्रश्न किये जिनका समाधान वेदों ब्राह्मणों-आरण्यकों धर्मशास्त्रों में था, विदुरजी जानते हुए भी धृतराष्ट्र के इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देते। उन्होंने कहा कि आपके इन प्रश्नों का समाधान मैं नहीं दे सकता क्योंकि मेरा जन्म शूद्रा स्त्री (दासी) के उदर से हुआ है। अत: मेरा उपदेशाधिकार नहीं हो सकता। इनका उत्तर ब्रह्मर्षि सनातन जी से श्रवण करना ही श्रेष्ठ रहेगा।

शद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद् वक्तुमुत्सहे।
कुमारस्य तु या बुद्धिर्वेद तां शाश्वतीमहम्।।

उद्योग पर्व महाभारत 41/5

महाभारत युद्ध के पश्चात् भी ब्रह्मज्ञानोपदेश के लिए विदुरजी धृतराष्ट्र बद्रिकाश्रम में ब्रह्मर्षियों के पास ही ले गये थे। क्योंकि इनको उपदेश का अधिकार नहीं था।

जनक-भीष्म-विदुर व्यासपीठस्थ नहीं- अस्तुतावत् विदुरजी की नीति ख्यात है। वह वेद तथा शास्त्रनुमोदित ही है, किन्तु विदुरजी ने कभी भी व्यासपीठ लगाकर धर्मसभा को संबोधित नहीं किया। यदि वे चाहते तो तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ व्याससिद्ध हो सकते थे। वे आज की भाँति होते तो पूज्य गोस्वामीजी के शब्दों में-

बादहिं शूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर आँख देखवहिं डॉटि।।

(मा. 7/98/2)

इसी युक्ति को विदुरजी चरितार्थ कर सकते थे। पर नीति और धर्म के ज्ञान के होने का तात्पर्य है संपूर्ण नीति तथा संपूर्ण धर्म का पालन। "शास्तीति इति शास्त्रम्" जो सभी पर शासन करता है वह शास्त्र कहलाता है। जो शास्त्र के शासन में रहता है उसे यमराज के शासन में रहने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। क्यों ब्राह्मणेतर को व्यासपीठ का अधिकार नहीं दिया गया-

प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः।। मनुस्मृति 10/1

ठीक इसी श्रृङ्खला में जनक जी का नाम अत्युच्च है। उनके दरबार में तो अनेक ज्ञान परिपक्व जन अपनी परीक्षा देने तथा शास्त्र विमर्श करने जाते हैं। उनका ब्रह्मज्ञान अद्वितीय तथा परिपक्व था। क्षत्रियवरेण्य वे जनकजी भी ज्ञानसम्पन्न होकर भी अष्टावक्र प्रभृति अवधूतों, योगीश्वरों (भागवत) से भगवत्कथा था तथा धर्मोपदेश ग्रहण करते थे। स्वयं उपदेशक बनकर व्यासपीठ नहीं संभाला अर्थात् ब्रह्मज्ञानी होकर भी वे "**श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञे**" का पालन करते रहे। "**स्व स्वे नियोक्ष्यति**" का ध्यान तो सभी को रखना होगा। बृहदारण्यकोपनिषद् के द्वितीय अध्याय के षष्ठ ब्राह्मण में यही ब्रह्मविद्या की परम्परा का ब्रह्मा से लेकर पौतिमाष्य तक 68 प्रवचनकारों का उल्लेख हैं वे सभी ब्रह्मर्षि ही हैं। महाराज मनु ने स्वयं कहा कि-

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः"

मनुस्मृति 2/20

"**अग्रजन्मनः**" कहकर वही वर्णश्रेष्ठ के द्वारा ही उपदेशित होने का सङ्केत कर दिया है। अर्थात् सभी वर्ण ब्राह्मण से अपने धर्म की शिक्षा ग्रहण करें।

कुतर्क का समाधान- यह तर्क सर्वथा अश्रद्धालु तथा बुद्धिहीनों का है कि ये ग्रन्थ ब्राह्मणों ने लिखे तो अपनी महिमा का ही प्रदर्शन प्रतिष्ठान किया है। अन्यों का नहीं। वे अल्पपुण्य तथा कलिदास हैं जो इस प्रकार के अशास्त्रीय कुचिन्तन को अपने मस्तिष्क में स्थान देते हैं। इसी तर्क में वह यह भी कहते हैं कि "**जन्मना जायते शुद्धः कर्मणा द्विज उच्यते**" ऐसा नहीं है वास्तविकता यह है कि ब्राह्मण जन्म से ही ब्राह्मण है।

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः कर्मणा द्विज उच्यते।
वेदपाठी भेवद्विप्रः श्रोत्रियो वेद पारगः।। (स्मृतिषु)

ब्राह्मण जन्म से ही ब्राह्मण है, कर्म (संस्कारों से) से वह द्विज होता है। जो वेदज्ञ होता वह विप्र है तथा वेदों का पारगामी विद्वान् श्रोत्रिय कहलाता है श्री मद्भागवतम् तो स्पष्ट कहती हैं कि

"**जन्मना ब्राह्मणो गुरुः**" (भा.10/8/6)

अर्थात् ब्राह्मण जन्म से ही मनुष्य मात्र का गुरु है। भागवत में आगे वर्णन करते है कि देवताओं के भी आराध्यदेव यज्ञपति सर्वशक्तिमान् भगवान् श्री हरि स्वयं ब्राह्मणों को अपना प्रभु, अपना इष्टदेव मानते हैं। अतएव ब्राह्मणों से बढ़कर और कोई भी प्राणी जगत में नहीं है। यथा

तस्य वै देवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः।
ब्राह्मणाः प्रभवो देवं न तेभ्यो विद्यते परम्।।

(भा. 10/81/39)

हमारे आर्य समाजी भाईयों ने वर्ण व्यवस्था को भ्रष्ट करने में जो योगदान दिया है वहीं उनकी विद्वता का शीर्षस्थ है। शूद्रों को भी वेदविद् कर अब वे नूतन ब्रह्मा बनकर उनको ब्राह्मण बना रहे हैं। उनकी बात ही करना निरर्थक है। जब वे श्री राम कृष्णादि परमात्मा को परमात्मावतार ही नहीं मानते तो ब्राह्मण को ब्राह्मण नहीं मानना उनके लिए बहुत बड़ी बात नहीं है। जबकि मेरुतंत्र में ब्राह्मण के जो पंच लक्षण है उनमें ब्राह्मण पिता एवं माता को प्रथम दो लक्षणों में वरीयता दी गई है।

ब्रह्मवीर्य ब्रह्मक्षेत्रं, संस्कारा ब्रह्मसंभवाः।
ब्राह्मणाचरणाद् ब्रह्मविधाभिर्ब्रह्मणो भवेत्।।

(मेरुतंत्र)

कुछ तपस्या से स्वयं को श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं तथा ब्राह्मणों को हेय मानते हैं। और व्यास पीठस्थ हैं, यह श्रुति मार्ग से उनका भी दुर्व्यवहार है।

शातातपस्मृति में स्पष्ट कहा गया है कि क्षत्रियादि वर्ण यदि ज्ञानवान् गुणवान कर्मनिष्ठ तथा बहुश्रुत भी हों तो भी वे ब्राह्मण के द्वारा प्रणाम के योग्य नहीं है।

नाभिवाद्यास्तु विप्रेण, क्षत्रियाद्याः कथंचन।
ज्ञानकर्म गुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः।। (शातातप स्मृति)

कई तथा कथित वैष्णव स्वयं को स्वयं भू समझकर ब्राह्मणों से पूजा प्रणाम कराते हैं, यह सर्वथा अनुपयुक्त ही नहीं अशास्त्रीय भी है। वर्णक्रम

विरुद्ध हैं। परम पूज्य विश्व के अद्वितीय विद्वान् जगद् गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्री रामभद्राचार्य जी (चित्रकूट) ने अयोध्या में मानस की नवान्ह कथा में सन् 2004 में श्री कारसेवकपुरम में अनेक महन्तों संतों के मध्य यह उद्घोष किया था कि वे वैष्णव सुनिश्चित ही अपना पतन करा रहे हैं, जो ब्राह्मणों से चरण स्पर्श प्रणाम पूजा कराते हैं। उन परम वैष्णवाचार्य से बड़ा तो कोई प्रमाण हो ही नहीं सकता यथा-

ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहि।
उभय लोक निज हाथ नसावहिं।।

यह तथ्य भी सत्य है कि त्यागी वीतरागी-भगवद्भक्त विरक्त वैष्णव को ब्राह्मण तो क्या देवता भी नमन करते हैं, परंतु ब्राह्मणत्व वर्ण वैशिष्ट्य के अन्तर्गत है, यह भी सत्य है। यद्यपि जो वैष्णव नहीं है, उनसे भगवत्कथा कदापि नहीं सुनना चाहिए विशेषकर श्रीमद् भागवती कथा। यथा-

अवैष्णवमुखाद् गाथा, न श्रोतव्या कदाचन।
शुकशास्त्रं विशेषेण, न श्रोतव्यमवैष्णवात्।।

कौशकी संहिता

अगले मंत्र में कौशिकी संहिता वैष्णव का अर्थ ब्राह्मण ही निरुपित करती है। यथा-

वैष्णावोऽत्र स विज्ञेयो, यो विष्णोर्मुखमुच्यते।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमिति श्रुतेर्ब्राह्मण एव सः।।

(कौ.सं. 6/20)

इससे निष्कर्ष निकला कि ब्राह्मणेतर वैष्णव से कथा श्रवण ना करे वैष्णव ब्राह्मण गुरु या आचार्य पद का अधिकारी है। संहिता आगे वर्णन करती है कि गुरु भी ब्राह्मण को ही बनावें यदि ब्राह्मण विप्रेतर को बनाता है। वह भी शूद्र जो जाता है। यथा-

विप्रो विप्रेण गुरुर्विप्रो जायते ध्रुवम्।
ध्रुवम् न च विप्रेषु गुणार्हस्तस्मात् विप्रं गुरुं चरेत्॥

(कौ.सं. 6/26)

प्रजापति ने विप्र में ही आचार्यत्व की स्थापना की है। कलियुग में अन्य वर्ण तपश्चर्या से ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं कर सकते, प्रथमतः ब्राह्मणवीर्य से संभव होना अनिवार्य है यथा-

कलौ ब्राह्मण वीर्यात् न तपश्चरणादिभिः

यवन आदि पतित को हिन्दू बनाया जा सकता है ब्राह्मण कदापि नहीं, सन्यासी कदापि नहीं बनाया जा सकता है। (कौ.सं. 2/37) श्रुति भी कहती है "**ब्राह्मण्यां ब्राह्मणः**" यज्ञोपवीत धारण करने से यापित ब्राह्मण नहीं हो सकता। यथा-

"न यापितो ब्राह्मणतां, याति सूत्रादिधारणात्॥"

(कौ. सं. 2/36)

हाँ, तात्विक दृष्टि से प्रमाण स्वरूप हमारी संस्कृति में वैष्णव तो क्या हम तो-

विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

गीता 5/18

अर्थात् विद्या-विनय संपन्न ब्राह्मण में, गाय में, हाथी में, श्वान में, चाण्डाल में सर्वत्र समदर्शिता, ब्रह्मभाव होता है, किन्तु व्यवहार जगत् की

वर्णाश्रमीय शास्त्रीय परम्परा से तो ब्राह्मण ही प्रणम्य है। सन्यासी तो ब्राह्मण के द्वारा प्रणम्य सदैव है, क्योंकि सन्यास लेने का अधिकार मात्र ब्राह्मण को है, क्षत्रियादि किसी को भी नहीं अतः **"दण्डधारण मात्रेण नरो नारायणो भवेत्।"** चारों आश्रम ब्राह्मणों को हैं। क्षत्रिय को वानप्रस्थ अंतिम आश्रम हैं अर्थात् तीन आश्रम, वैश्य को मात्र ब्रह्मचर्य-गृहस्थ इनको वानप्रस्थाधिकार भी नहीं। शूद्र को मात्र गृहस्थ धर्म ही प्रशस्त शास्त्रों ने मान्य किया है।

पतित-कर्महीन-धर्महीन ब्राह्मणों की शास्त्र ने पर्याप्त आलोचना भी की है। आप्तपुरुष कभी पक्षपात नहीं करते। अतएव वह जगत्पूज्य रहे हैं। उनकी मानसिकता में आज की तरह संकीर्ण वृत्ति, ईर्ष्या, द्वेष, पूर्वाग्रह, हठ, प्रतिस्पर्द्धा, प्रतिरोध की कोई भावना नहीं होती।

आप्ताः शिष्टाः पुरुषास्ते तेषां वाक्यमसंशयम्।

व्यासजी की निष्पक्षता-

पद्मपुराण में व्यासजी आत्मज्ञानहीन ब्राह्मणों की भर्त्सना करते हैं-

पुत्रस्योत्पादने दक्षाः अदक्षा मुक्ति साधने।

अतः मुक्ति साधन अदक्ष विप्र को निकृष्ट मानते हैं। प्रत्येक पुराण में कर्म निकृष्ट ब्राह्मण की भर्त्सना की है। यज्ञकर्ता ब्राह्मणों ने श्रीमद्भागवत में गोप बालकों को भोजन न देने पर व्यासजी तुरन्त वैदिक विप्रो की निन्दाकर देते हैं-

क्षुद्राशा भूरिकर्माणो वृथा पण्डित मानिनः।।

(भागवत 10)

गोस्वामी जी स्वयं लिखते हैं-

विप्र निरक्षर लोलुपकामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।।
सोचिअ विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धर्म विषय लवलीना।।

अतः यह पक्षपात नहीं आचार्यों का यथार्थ उद्‌घोष है। अभिमानी-अविवेकी-पुण्यहीनों को आचार्यों में इस प्रकार की मिथ्या भ्रांति उनके दुर्भाग्य का ही प्रमाण है। ब्राह्मण की तीन अर्हत्ताओं की आवश्यकता है।

तपः श्रुतिश्च योनिश्च त्रयं ब्राह्मण कारणम्।
यः तपः श्रुति हीनाभ्यां जातिरेव स ब्राह्मणः।।

जो तपस्या और शास्त्र से हीन है फिर भी वह जातितः ब्राह्मण है तथा मान्य भी रहेगा।

चत्वारो वर्णाः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यः
शूद्राः तेषां पूर्वः पूर्वो जन्मतः श्रेयान्।।

(आपस्तंब स्मृति 1/111)

अतः ब्राह्मण वर्ण गुरु ही मान्य है। व्यास पीठस्थ होने हेतु शास्त्रानुमोदित है।

ब्राह्मणेतर तथा स्त्री का अधिकार-

प्रवचन तो ठीक है, शास्त्र तो स्त्री तथा ब्राह्मणेतर को प्रणव उच्चारण का निषेध करता है।

ओंकारोच्चारणाद्धोमाच्छालग्राम शिलार्चनात्।
मह्यां पक्वान्न दानाच्च विप्रादन्यो व्रजेदधः।।

ब्रह्मवेवर्त पु. 83/11

शालाग्राम शिलार्चन तथा भगवत् नैवेद्य निर्माण भी ब्राह्मणेतर नहीं करता है। शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि-

प्रणवस्याधिकारो न तवास्ति वरवर्णिनि।
नमोभगवते वासुदेवायेति जप सदा।

(स्कंदपुराण नागर 257/6)

पार्वतजी को वेद का ॐ का उच्चारण मना था। आज की देवियों को वेदपाठ-गायत्री मंत्र की छूट कलियुग की कृपा है।

अथर्ववेद का प्रमाण-

अथर्व वेद में वर्णन है कि जब धर्मोपदेश कथा-उपदेश में व्यक्ति स्वाध्यायी ब्राह्मणों की वाणी का अनादर करता है, तथा स्त्री एवं ब्राह्मणेतर की वाणी का समादर करता है तो राष्ट्र से ओज-तेज-बल-वीर्य-समृद्धि आदि तेतीस गुण समाप्त हो जाते हैं। राष्ट्र में अनीति-अन्याय अत्याचार-भ्रष्टाचार-पापाचार-अनैतिकता-अराजकता तथा दिशाहीनता का प्रवेश होता है।

ओजश्च तेजश्च-प्रजाजशवश्च----।
तानि सर्वाणि अपक्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य
जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य।।

अथर्ववेद 12/15-17

सिद्ध होता है कि पूर्व में विधर्मियों के आक्रमण करने पर भी व्यक्ति ने धर्म नहीं छोड़ा, प्राण छोड़ दिये। आज इन धर्मोपदेशकों के अनधिकार

का परिणाम है कि लोग स्वतः धर्म छोड़कर अन्य संस्थाओं में विधर्मों में प्रवेश ले रहे हैं।

पुरोहित एवं व्यास का आचार-

धर्मशास्त्र के वेद मंत्रों-व्याकरणशास्त्र के अध्येता ही धर्मसभा, धर्ममंच और धर्मकथाओं के प्रवक्ता हो सकते हैं। क्योंकि धर्मशास्त्र के प्रवक्ता वेदमंत्रों के दृष्टा ऋषि ही हुये हैं। अतः

"वर्णेतराणां प्रवेशो निषिद्ध"

"ये हि वेदमंत्राणां दृष्टारस्ते एवं धर्मशास्त्रस्य प्रवक्तार"

ब्राह्मणों की योग्यता में महाभारत में वर्णन आया कि पुरोहित को चारों वेद षडङ्ग, पवित्र और सत्यवादी धर्मात्मा होना चाहिये।

वेदे षडे निरताः शुचयः सत्यवादिनः।

धर्मात्मानः कृतात्मानः स्युर्नुपाणां पुरोहित।। (महाभारत)

इन योग्यताओं के अतिरिक्त ब्राह्मण-व्यास को गाने का नाचने का मना किया है।

तस्माद् ब्राह्मणो नैव गायेन्नानृत्येन न्माग्ला गृधः स्यात्।।

(अथर्ववेद)

यद्यपि भगवत्कथा में गायन-वादन का श्री नारद परम्परा में, भक्ति क्षेत्र में प्रशस्ति मानी गई है। किन्तु वेद ने संभवतः भक्ति से पृथक् गायन-नर्तन निषेध किया है। गोस्वामी तुलसीदासजी भी इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए कलि की दुर्नीति का वर्णन करते हैं।

शूद्र करहिं जप तप व्रत नाना।
बैठि बरासन कहहिं पुराना।।

7/100/9

व्यासपीठाधिकार-

यदि शूद्र व्यास पीठस्थ होते हैं तो चाण्डालवत् हो जाते हैं। विप्राधिकार ही व्यास पीठस्थ में श्रेयस्कर है। धर्मशास्त्रों के प्रवचन का अधिकार मात्र ब्राह्मण को ही है।

व्यासासनोपवेशाच्च शूद्रचाण्डालतां व्रजेत्।
विप्रस्येवाधिकारोऽस्ति व्यासासन समागमे।।
धर्माणां श्रुतिगीतानामुपदेशे तथा द्विजः।

अंततः अष्टादश महापुराणों के तथा श्रुति स्मृति उपनिषदों में कहीं भी ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी को धर्मोपदेश तथा प्रवचन का अधिकार प्रमाणित नहीं होता। जनकजी, विदुरजी भीष्म पितामह के अतिरिक्त कलियुगीन कितने भक्त हुए जिनके भक्ति उपदेशामृत अतिश्रेष्ठ हैं, अनुकरणीय-आचरणीय है। पर वे भक्ति की ओट में धर्मोपदेश तथा व्यासपीठ पर नहीं बैठे जब कि ये तो भगवद्भक्त ही नहीं भगवत्प्राप्त संत थे, जैसे कबीर-दादू-नामदेव-धन्नाजाट, रैदास, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, सखूबाई, करमा बाई, जनाबाई और मीरा बाई। भगवद्दर्शन पाकर भी उन्होंने धर्माज्ञा का अतिक्रमण नहीं किया।

अतः शास्त्र निर्णय धर्मोपदेश तथा व्यासपीठ के लिए विद्वान-सदाचारी-शास्त्रविद् ब्राह्मण को ही सुनिश्चित करता है अन्य को नहीं।

नारी महिमा में वेद प्रमाण-

व्यासपीठ पर आजकल ब्राह्मणेतर से भी अधिक संख्या स्त्रियों की बढ़ रही है। नारी समाज का शास्त्र ने अति सम्मान किया है, किन्तु उनको

भी शास्त्रीय मर्यादा के अन्तर्गत ही रहने का विधान है। महिमा के संदर्भ में वेद कहते हैं कि कुछ लोगों को यज्ञ के द्वारा, कुछ को दान के द्वारा, कुछ को सोमपानादि से सद्गति और श्रेष्ठ लोक मिलते हैं, किन्तु स्त्री तो स्वत: सामान्य पति सेवा से ही सद्लोकों में जाती है।

हविर्भिरेके स्वरित: सचन्ते सुबन्त एके सवनेषु सोमान्।
शचीर्मदन्त उत दक्षिणाभिर्नें जितह्यान्त्यो नरकं पताम:।।

(ऋग्वेद)

स्त्री को दासी बनाकर रखने की जो बात कही जाती है वह सर्वथा असत्य है। वेद में ससुराल जाने वाली वधू को आशीष दिया गया कि तुम ससुर की साम्राज्ञी, सास की साम्राज्ञी, ननद की साम्राज्ञी, पति के हृदय की साम्राज्ञी बनो।

साम्राज्ञीश्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रूणां भव, ननान्दरि।
साम्राज्ञी भव, साम्राज्ञी अधिदेवेषु।।

(ऋग्वेद 10/86/46)

शास्त्र उनको दासी नहीं महारानी बनाता है। वेदों में उनको सम्मानित श्रृंगारित रहने का वर्णन किया है।

जायेव पत्या उशती सुवासा उषा तस्त्रवे निरिणीते अप्स:।।

स्त्रियो को वेदों में आवश्यकता पड़ने पर गृह बन्दिनी नहीं रण में उतरकर शस्त्र संचालन का भी आदेश दिया है।

स्त्रियो हि स आयुधानि चक्रे किं माकरन्नबला अस्य सेना:।।

(ऋग्वेद 5/30/9)

इसी सिद्धान्त से संभवत: कैकेयी जी शम्बरासुर से युद्ध करने दशरथजी के साथ युद्ध स्थल में गई थी। महारानी लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, पद्मावती ने भी इसी काल में युद्ध किया।

स्त्री रहित यज्ञ नहीं हो सकता। अयज्ञो व एषः यो अपत्नीकः।।

(तैत्तरीयोपनिषद् 2/2/216)

वेदों में कन्या को पिता की सम्पत्ति का भी अधिकार दिया गया है। शतपथ ब्राह्मण में सुकन्या कहती है कि पिता ने मुझे जिस पति को समर्पित किया है, जीते जी में उसका परित्याग नहीं कर सकती।

"सा होवाच यस्मै मां पितादान्नैवाहं तं जीवन्तं हास्यीति"

(शतपथ ब्राह्मण 4/1/5/9)

वैदिक कन्याएँ भी पूर्ण मर्यादित थी, आज की तरह उदण्ड उच्छृंखल-उन्मत नहीं होती थी। वा. रामायण में राजा कुशनाभ की कन्या भी यही बात कहती हैं कि पिता हमारे प्रभु है जिसे मुझे देंगे, मैं सहर्ष उसकी पत्नी रहूँगी।

पिता हि प्रभुरस्माकं पिता हि दैवतं परम्।
पिता यस्मै प्रदास्यति स मे भर्ता भविष्यति।।

इसी प्रकार मनुस्मृति में भी कहा गया कि नारी का सम्मान होता है (वस्त्र-भूषण-मधुरवचन से) वहाँ उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं। जहाँ इनका अपमान होता है। वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया।।

मनुस्मृति 3/36

रामचरित मानस में भी स्त्री सम्मान परकाष्टा पर है। यहाँ तो रामजी स्वयं पुष्पमाला बनाकर श्री जानकी को सादर पहिनाते हैं।

सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक शिला पर सुन्दर।।

(अरण्यकाण्ड)

वन में चलते रामजी सीताजी को निहारते भी सादर हैं।

सादर बारहिंबार चितें तुम त्यों हमरो मन मोहै।
ग्रामबधू पूछत सिय सों सखि साँवरो सो रावरो को हैं।

(कवितावली)

गोस्वामीजी द्वारा नारियों का बहुशः सम्मान है। फिर भी तथाकथितजनों को मानस का यह विस्तृत क्षेत्र सम्मान क्षेत्र दिखाई न देकर मात्र एक चौपाई ही दिखाई देती है- **ढ़ोल गवांर शूद्र पशुनारी**। सकल ताड़ना के अधिकारी। जबकि मूलतः यही चौपाई गोस्वामीजी ने शास्त्रों से ली है।

दुर्जना, शिल्पिनो दासः दुष्टाश्च पटहा स्त्रियः।
ताड़िता मार्दवं यान्ति न ते सत्कार भाजनम्।।

(गरुड़ पुराण 108/31)

लालनीया सदा भार्या ताडनीय तथैवच।
ताड़िता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा।।

(शंखस्मृति)

यहाँ ताड़न का तात्पर्य, उत्पीड़न से नहीं, वह भी लालन की विधा के अन्तर्गत है। फिर **''दुष्टाश्च स्त्रिय''** पुराणकार ने लिखा यह दुष्ट स्त्री को लिखा है न कि सती-साध्वी धर्मपरायणाओं को सती स्त्री तो पृथ्वी धारणार्थ स्तम्भ है। शास्त्रों ने कहा कि सतियों से पृथ्वी भी स्थिर हैं, अन्यथा रसातल में चली जाएगी।

"सतीभिः सत्यवादिभिः" सप्तभिर्धार्यते मही।।

महाभारत

इससे अधिक स्त्री क्या सम्मान चाहती है? जो सम्मान शास्त्रों ने वेदों ने रामायणों ने श्री गोस्वामीजी ने दिया, वह सम्मान कोई कदापि नहीं दे सकता। आज स्त्री के सम्मान का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि किसी भी वस्तु के प्रचार प्रसार करने के लिए नग्न स्त्री का चित्र देना ही अनिवार्य होता है। दूरदर्शन में अर्द्धनग्न स्त्रियों को दिखाये बिना कोई प्रचार संभव नहीं है यह है वर्तमान नारी का सम्मान।

वर्तमान प्रवचन क्षेत्र में प्रवक्त्री- वर्तमान समाज की नारियां अब प्रत्येक क्षेत्र की प्रतिस्पर्द्धा के साथ प्रवचन क्षेत्र में बड़ी तीव्रता से प्रवेश कर रही हैं। उनका यह प्रवेश सर्वथा अशास्त्रीय अमानवीय-अवैज्ञानिक-अप्रमाणित-सर्वथा अनुपयोगी एवं पूर्ण अनुचित है। जो शास्त्र की गार्गी-मैत्रेयी की दुहाई देने वाली देवियाँ हैं, उनको गार्गी-मैत्रेयी का केवल किसी सुधारवादी ने नाम रटा दिया है, वे उनके विषय में कुछ नहीं जानती हैं। यह प्रथा बहुत प्राचीन नहीं है। क्योंकि वेदों में- उपनिषदों में- अष्टादश महापुराणों में रामायणों में कहीं भी स्त्री के द्वारा व्यासपीठ संभालने का प्रवचन के अधिकार का प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। यहाँ तक कि पुराणों में व्यासपीठ पर बैठकर त्रिदेवों के अतिरिक्त देवर्षि-महर्षि-ब्रह्मर्षियों का प्रमाण प्रवचन के क्षेत्र में है, पर किसी भी देवी के द्वारा धर्मोपदेश-कथा का वर्णन व्यासपीठ से नहीं मिलता यहाँ तक कि पार्वती जिन्होंने श्रीशिवजी से संपूर्ण कथाएँ श्रवण की थी। पार्वतीजी ने कभी भी व्यासपीठ लगाकर कथा प्रवाह नहीं किया। सीताजी, राधाजी, दुर्गाजी, लक्ष्मीजी, वेद-माता गायत्री यहां तक कि विद्या की अधिष्ठात्री भगवती सरस्वती ने

भी कभी व्यासपीठ किसी भी स्थिति में नहीं संभाला, जबकि वे सभी देवियाँ सामान्य स्त्रियोचित कालुष्य से सर्वथा विमुक्ता थी। ऐसा प्रमाण अष्टादश पुराणों में भी कहीं प्राप्त नहीं कि इन देवियों ने प्रवचन किये। अनसूयाजी ने पतिव्रत धर्म का उपदेश सीताजी को दिया, पर एकान्त में बिठाकर, मंच नहीं लगाया। आज की देवियाँ अन्यथा न माने यह उनका सर्वथा अनैतिक-अविहित दुस्साहस है स्त्री के इस व्यासपीठारोहण अनीति का आरंभ अधिक प्राचीन नहीं। लगभग 50-60 वर्ष पुराना ही है। विशेषत: जब से मानस सम्मेलनों का आरंभ हुआ। तभी से मीठे गले के स्वाद लोलुपों ने, नेत्रों की वासनात्मक तृप्ति को धर्म की ओट में तर्पण करने वाले लोचन लालचियों ने इसका सूत्रपात किया। व्यासपीठ आक्रान्त हुए, वक्तागण पूर्व में कम ही समर्थक थे, पर आयोजक नवयुवक मण्डल, श्रोता समुदाय ने इसको शिरमौर बना लिया।

वर्तमान अध: पतन की पराकाष्ठा-

वर्तमान यहाँ तक प्रगति पूर्ण हुआ कि रजस्वला अवस्था में भी देवियाँ मानस पीठों को व्यासों को परम पावनता देने लगी। चार-चार शङ्कराचार्यों की उपस्थिति में भी दीप प्रज्वलन के लिए सिनेमा अभिनेत्री को आमंत्रित कर अध्यक्ष बनाए जाने लगा। इस दुर्गति से अधिक पराकाष्ठा क्या होगी। व्यास और आयोजक सभी धर्मोत्थान के स्थान पर पतनोन्मुखी होने लगे। धर्मकार्य में अधर्म का सहर्ष सप्रमाण प्रवेश हो गया। कुमारिकाओं को असंयमित अविवेकी-उच्छृंखल वित्ताश्रित घृणित जीवन जीने का शुभारंभ हो गया। समाज ने इसको प्रमाणित कर दिया। व्यासों की आचार्यों की भीष्मपितामही चुप्पी (मौन) तो नहीं कह सकते कुछ आचार्यों ने विरोध भी किया स्वीकार नहीं किया।

स्त्री प्रवेश पर आचार्यों की असहमति-

जब देवियों का प्रवेश मंचों पर होने लगा तो ऐतिहासिक बिन्दुओं से इस समय भी प्रमाणित हो रहा है कि विरोध पूर्व में हुआ है। यथा वाराणसी में ज्ञानवापी पर कार्तिक शुक्लपक्ष में होने वाला श्री मानस नवान्ह पारायण, जिसमें यह शरीर लगभग दश वर्ष पूर्व साकेतवासी पं. श्री शिवनारायणजी व्यास के आमंत्रण में गया था, तब उन्होंने बताया कि पूज्य धर्मसम्राट स्वामी करपात्रीजी के नियमानुसार इस मंच पर महिला प्रवक्त्री प्रवेश सर्वथा वर्जित है। आज भी वह परंपरा चल रही हैं। संकटमोचन मंदिर वाराणसी में विवाह पञ्चमी तथा हनुमान जयंती दोनों कार्यक्रमों में कभी भी प्रवक्त्री का प्रवेश अभी भी नहीं होता। पूर्व व्यासों ने बताया कि स्वामी करपात्री जी के सामने किसी विदुषी का प्रवचन समाज ने रखा था, पर उन्होंने व्यासमंच पर नहीं आने दिया। उनके मंच से चले जाने के पश्चात् नीचे ही खड़े होकर देवी से प्रवचन करवाया गया। इसी श्रृंखला में पूज्य ब्रह्मलीन माधवाचार्य जी शास्त्री दिल्ली ब्रह्मलीन पूज्य, प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, वैष्णव कुल भूषण साकेतस्थ पं. रामकुमार दासजी वेदान्ती (मणिपर्वत) अयोध्या पूज्य ब्रह्मलीन मानस राजहंस विजयानंदजी त्रिपाठी, पू. स्वामी अखण्डानन्दजी वृन्दावन आदि व्यासों ने भी इस विषय में विरोध किया था। कुछ मंचों पर प्रतिबंध बना रहा। किन्तु इस रसिक तथा अज्ञ समाज का बहुमत मिलता रहा। इस समय भी अनन्त श्री समलंकृत जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी स्वामी श्री रामभद्राचार्यजी, तुलसीपीठ चित्रकूट, पूज्य पं. श्री प्रेमाचार्यजी शास्त्री शास्त्रार्थ पंचानन, पूज्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्यजी (काशीपीठ) अयोध्या, पूज्य जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानन्दजी (पुरी) पं. श्री श्यामनारायणजी शास्त्री, पं. श्री सुन्दर लालजी दुबे मानस सुमन (पिपरिया) प्रिय मानस मृगेन्द्र डॉ. ब्रजेशजी दीक्षित (जबलपुर) आदि विद्वान आज भी विरोध-निषेध में है। पर जैसे बिना तुलसीदल के भगवान् को भोग स्वीकार नहीं है। ठीक उसी

प्रकार आज के मानस आयाजकों व्यासों को बिना कुमारी तथा श्रीमती के प्रवचन के बिना आयोजन शून्य महत्वहीन असफल लगता है। ये उनके भाग्य की विडम्बना है वासना पङ्कग्रस्त श्रोताओं के आग्रह पर ब्रह्मचर्य आश्रमों में भी आयोजनों में इन प्रवक्त्रियों का प्रवेश होने लगा।

मानसेतर वेद तथा भागवत में भी दुर्भाग्य पूर्ण प्रवेश-

श्री रामचरित मानस के मंचों के साथ ही अब वेद प्रवचनों तथा श्रीमद्भागवत महापुराण आदि जिनमें "**विद्यावतां भागवते परीक्षा**" का सिद्धान्त चलता था। उनमें भी गायन-नर्तन पूर्वक अब वेद तथा पुराण मंच भी रजस्वला अवस्था में ही विधिवत् सम्पन्न हो रहे है। यह ईर्ष्या द्वेष का प्रश्न नहीं, यही "**धर्मग्लानि**" है।

अतिशय देखि धर्म की गलानी।
परम सभीत धरा अकुलानी।।

के अंतर्गत है। रसज्ञ तथाकथित व्यासजी शिष्यों को मानस कम पढ़ाते हैं, बालिकाओं को तैयार कर रहे हैं। वे बेचारी क्या भागवत् बोलेंगी? इसी प्रकार भागवत् पुराणादि में ब्राह्मणेतर का भी खुला प्रवेश हो रहा है। यही स्थिति रही तो 20 वर्ष बाद शुद्ध भागवत का तो श्रोताओं को बोध भी नहीं रहेगा। इसी संदर्भ में स्वकीय नहीं शास्त्रीय विचार किया जावे।

स्त्री द्वारा मंत्र दीक्षा-

आज की मंत्र दीक्षा प्रतिस्पर्धा में भी देवियाँ पीछे नहीं रही। जिनको स्वयं मंत्राधिकार नहीं वे दूसरे को क्या मंत्रदान करेंगी। बहुसंख्यक भोले नर नारी इनसे दीक्षा लेकर अपने दोनों लोक नष्ट कर रहे हैं। अनुपनीत-जिसको यज्ञोपवीत का अधिकार ही नहीं वे मंत्रदीक्षा कर यज्ञोपवीत पहिना रही हैं। स्त्री की बात को छोड़े पुरुषों को भी ब्राह्मण के अलावा अधिकार शास्त्र नहीं दे रहा है।

ब्राह्मणेतर से मंत्रदीक्षा लेने का शास्त्रीय विचार-

ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य से मंत्र लेने में शास्त्र ने कहा कि वे शिष्य सुनिश्चित नरकगामी होता है। तथा अनेक विपत्तियाँ है।

ब्राह्मणेतरान् वर्णान् गुरुन् मोहात् करोति यः।
सयाति नरकं घोरं विपन्नोऽपि भवेद् ध्रुवम्।।

(ब्रह्मपुराण)

अपने से नीचे वर्ण की जाति से मंत्र लेने वाले श्वान की योनि में जन्म लेता है।

यो नरः नीच वर्णेभ्यो मंत्र ग्रहणमाचरन्।
न मंत्रफलमाप्नोति श्वयोनिं चाधिगच्छाति।।

स्कन्द पुराण

यदि उच्च वर्ण वालों ने अपने से नीच वर्ण या ब्राह्मण के आचार्य के अतिरिक्त किसी से दीक्षा ली है तो वह प्रायश्चित करे, तथा श्रेष्ठ गुरु का वरण करे।

वर्णोत्कृष्टो हीनवर्ण गुरुमोहाद् यदाचरेत्।
प्रायश्चितं तदाकृत्वा गुरुमन्यं समाश्रयेत्।।

(विश्वामित्र संहिता)

जब ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य जाति से मंत्र ग्रहण का यह विचार है तब स्त्री का क्या कहना? **''स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनाम्''**

स्त्री द्वारा मंत्र दीक्षा तथा यज्ञाहुति का शास्त्रीय विरोध-

दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु।
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति।।

(मनुस्मृति 3/18)

जिस व्यक्ति के घर में देव कार्य यज्ञ मंत्रदीक्षा श्राद्ध स्त्री के द्वारा सम्पन्न होते हैं, वहाँ देवता तथा पितरगण सदा के लिए विदा हो जाते हैं।

जिस यज्ञ में स्त्री हवन करती है (पति के बिना) नपुंसक के द्वारा होम होता है। जो स्त्री से मंत्र लेता है। ऐसे स्थल पर कभी भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिये।

नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा।
स्त्रिया क्लीवेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित्।।

मनुस्मृति 4/205

जो स्त्री हवन करती है उस यज्ञ में यजमान की श्री नष्ट होती है अतः देव प्रतिकूल यज्ञ का त्याग करना चाहिये।

अश्लील मेतत्साधूनां यत्र जुहत्यमी हविः।

प्रतीप मेतद्देवानां तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।।

मनु. स्मृति 2/206

स्त्री को यज्ञ में पति के साथ मात्र बैठना चाहिये न कि आहुति देना। वह तो मात्र पति सुश्रुषा से ही मुक्ति पाती है।

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूयते येन तेन स्वर्गे महीयते।।

मनु. 5/155

स्त्री पति के बिना यज्ञ नहीं कर सकती और न ही व्रतोपवास वह पति सेवा से ही स्वर्गगामिनी होती है। कुछ लोग वाल्मीकि रामायण में

कौशल्याजी को हवन करते हुए प्रमाण को आदर्श मानना चाहते हैं, पर वहां कौशल्या स्वयं हवन नहीं कर रही हैं-

"अग्निं जुहोतिस्म तदा मन्त्रवत्कृत्मंगला"

(वा.रा.)

इसका वास्तविक तात्पर्य कि कौशल्या निर्विघ्नता के लिए ऋत्विजों द्वारा हवन करा रही थी। श्रीराम ने हवन करवाते हुए देखा। "हावयन्ती हुताशनम्" अगले श्लोक में यह लिखकर स्पष्ट ही कर दिया। अतः कौशल्या के हाथ से नहीं, ब्राह्मणों द्वारा हवन का प्रमाण है।

कन्या भी हवन नहीं कर सकती-

यहाँ यह तर्क उठता है कि स्त्री हवन नहीं कर सकती किन्तु कन्या तो कर सकती है। इसके लिए शास्त्रों ने कन्या को तो यत्र में प्रवेशाधिकार नहीं दिया क्योंकि वह अधवा है। यज्ञ में मात्र सधवा जा सकती है।

न वै कन्या न युवती नामन्त्रज्ञो न बालिशः।
होता स्यादग्नि होत्रस्य नातो नासंस्कृतस्तथा।।

मनु स्मृति।। 36

नैव कन्या न युवती नाल्पविद्यो न बालिशः
परिवेष्टाग्नि होत्रस्य भेवन्ना संस्कृतस्तथा।।

महाभारत शान्ति पर्व

ऐसे अनेक प्रमाण है किन्तु विस्तार भय से इतना ही पर्याप्त है निष्कर्षतः स्त्री को यज्ञ में आहुति देने का मंत्रदीक्षा का भी अधिकार नहीं हैं।

वेदानुसार स्त्री जाति का सभा में कथाधर्मोपदेश अधिकार नहीं-

बृहदारण्यकोपनिषद् में पुत्री को पण्डिता बनाने का वर्णन है, यहाँ पण्डिता से तात्पर्य विदुषी, गृहकार्यदक्षा, नीतिनियम निपुणा भक्ति सदाचार सम्पन्ना सतीत्व और पतिव्रत प्रभावज्ञा होने से है। वेदज्ञा पंडिता अथवा प्रवचन पंडिता से प्रयोजन नहीं है। "**समिति गमः**" पुत्र को पण्डित बनाकर सभा में भेजने का प्रमाण दिया है। शतपथ ब्राह्मण में भी पुत्र को पण्डित सभा गमनार्थ अधिकार दिया-

"अथ य इच्छेत् पुत्रो मे पण्डितो विजिगीथः
समितिङ्गमः भाषिता जायेत सर्वान् वेदान् अनुब्रतीत्"

(शतपथ ब्राह्मण 14/9/17)

इस कण्डिका के अभिप्राय में शंकराचार्य भगवान् कहते हैं।

दुहितु पाण्डित्यं गृहतन्त्र विषयक्रमेव।।

अतः वैदिक मत है कि गृह-पाण्डित्या ही कन्या को होना चाहिए न कि सभा पंडिता।

गृह्य सूत्रों में पुंसवन संस्कार का विधान दिया गया है। तृतीय मास में पुत्र के पुंसवन में अध्ययन, बोध आचरण तथा उपदेश चार कार्यों की अपेक्षा ब्राह्मण पुत्र से है। कन्या से मात्र 3 अध्ययन, बोध एवं आचरण, उपदेश का नहीं। पुंसवन संस्कार तो पुत्र के ही लिए है। कन्या को नहीं अन्यथा "**कन्या सवन संस्कार**" क्यों नहीं दिया?

स्त्री यदि पति सेवा आदि कार्यों को नहीं करती तथा प्रवचनादि करती है तो नरक गामिनी होती है। (वेद दिग्दर्शन पृ. 244)

हविर्भिरेके स्वरितः सचन्ते सुवन्त एके सवनेषु सोमान्।
शतीर्मदन्त उत दक्षिणाभिर्नेज्जि ह्मायन्तो नरकं पताम:।। ऋग्वेद

स्त्री प्रवचनाधिकार निषेध

(महाभारत, रामायण, पुराण)

महाभारत के अनुसार स्त्री जन सभा में पहुँचती है, तभी विनाश का कारण समुपलवध होता है जब द्रौपदी को दुशासन ले गया, तब द्रौपदी ने कहा था कि भीष्म-द्रोणाचार्य विद्वानों के समक्ष यह अनीति! स्त्री कभी भी सभा में नहीं बुलाई जाती। फिर नीति और उपदेश की बात में कैसे करूँ क्योंकि स्त्री को अधिकार ही नहीं है। स्वयंवर के अतिरिक्त सभा प्रवेश मना है-

स्वयंबरे यास्मि नृपैदृष्ट्वा रङ्ग समागतैः।
न दृष्टा पूर्वा चान्यत्र साहमद्य सभां गता।।

सभापर्व महाभारत 2/69/1

मुझको तो सूर्य ने भी नहीं देखा में आज सभा के मध्य जन-समुदाय के नेत्रों का लक्ष्य बन रही हूँ।

यां न वायुर्न चादित्यो दृष्टवन्तौ पुरा गृहे।
साहमद्य सभा मध्ये दृश्यमस्मि जन संसदि।।

महाभारत सभापर्व 2/68/5

इससे सिद्ध हो ही गया कि श्रेष्ठ स्त्रियों का जन सभाओं में पहुँचना सनातन धर्म के विरुद्ध रहा है। द्रौपदी ने यह भी कहा कि जनसमूह में स्त्रियाँ बुलाई गई हो ऐसा कभी देखा सुना भी नहीं गया है। किन्तु आज इस सभा के मध्य मुझे बुलाया, अत: सनातन धर्म आज नष्ट हो गया है। इसका परिणाम भी सुने कि जिन कौरवों ने मुझे बुलाया है, धर्मोल्लंघन से उनका अब विनाश सुनिश्चित है।

धर्म्यां स्त्रियं सभा न पूर्वे नयन्तीति नः श्रुतम।
स नष्टः कौरवे येषु पूर्वो धर्मः सनातन।।

महाभारत 2/69/9

नूनमन्तः कुलस्यायं भविता नचिरादिव।।

2/69/17

अतः निश्चित ही सभा या जन-दृष्टि की विषय बनना स्त्री को दुर्भाग्य पूर्ण है।

श्रीराम ने भी सीताजी के वन चलने के प्रस्ताव पर कहा था कि तुम इतने श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होकर भी वनपथ लोगों के दृष्टिपथ में यह उचित नहीं अतः गृहवास करो।

सीते महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा।
इहाचरस्व धर्मं त्वं यथा मे मनसः सुखम्।।

वाल्मीकि रामायण 2/28/3

सीता को वन गमन में निकलते देखा सूर्य चन्द्रमा देवता भी छिप गये थे।

दिशः पर्याकुलः सर्वास्तिमिरेणेव संवृतः।
न ग्रहोनापि नक्षत्रं प्रचकाशे न किंचन।।

वा. रामायण 2/41/14

धर्म प्रमाण श्री भरत भी इसी बात को रोए थे कि सीता बड़े बड़े महाराजाओं के द्वारा भी कदापि दृष्ट (दिखाई) नहीं हुई। वह सीता आज मुझ पापी के कारण कालस्वरूपी किरातों के मध्य देखी जाएगी।

या सीता राजवृंदैश्च न दृष्टा नयनैः कदा।
सा सीता दृश्यते नूनं किरातैः कालरूपिभिः।।

पद्मपुराण पाताल 1/31/34

द्रौपदी के सभी में दृष्ट होने से कौरवों का नाश हुआ। सीता के बाहर दृष्ट होने से श्री दशरथजी की मृत्यु हुई। वर्तमान कालिक देवियों के सभा में दृष्ट होने का परिणाम कलियुग के हाथ में है? महाभाष्यकार लिखते हैं कि सभा में स्त्री का बोलना बैठना कदापि उचित नहीं है, धर्म विरुद्ध है।

"कथं हि स्त्रीनाम् सभायां साध्वी स्यात्"

अतः चित्रकूट की सभा में माताएँ न बोली, न प्रेक्षा समाज में पहुँची।

स्त्री के दोषकारी कारण हैं – असज्जनों की संगति, स्वतंत्रता, मधुपान, अतिभोजन, कथागोष्ठी तथा अकर्मण्यता। इन कारणों से सभी स्त्रियों का पतन ही होता है।

दौर्गत्यमतिरुपं चाप्य सत्संग स्वतंत्रता।
पानाशन तथा गोष्ठी प्रियत्वाकर्मशीलता।

भविष्यपुराण ब्रह्म 8/20

कितनी भी बड़ी सती साध्वी हो पर सभा में गायन करने से निश्चित ही भ्रष्टा होती है।

बृद्धादिभार्यां सज्जायां यानगेयादि संगिनीम्।
कः श्रद्धयात्सतीत्येवं साध्वीमपि हि योषितीम्।।

भविष्यपुराण ब्राह्म 13/59

पर पुरुष से विचारों का आदान प्रदान, हास परिहास, लेनदेन, अधिकयात्रा तथा दीक्षा देना ये दुष्टाओं के कर्म है।

पुंसोऽन्याग्रहमालापस्मित विप्रेक्षतानिच
मंत्र मंडल दीक्षायां सक्तिः संवसनेषु च।

भविष्य पु. 10/18/19

स्मृति शास्त्रों में स्त्रियों का कथा सभा में निषेध-

मनु स्मृति में वर्णन आया कि जो स्त्री सभा के समक्ष गाती बजाती है। निश्चित ही वह धर्म से गिर गई तथा दण्डनीय है।

प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि।
प्रेक्षा समाजं गच्छेद्वा सा दण्डया कृष्णलानिषद्।।

मनु स्मृति 9/84

स्त्रियों को सभी दृष्टि से बचाकर रक्षा करनी चाहिये क्योंकि अरक्षित स्त्रियाँ दोनों कुलों को संतप्त करती है।

सूक्ष्मेज्योऽपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोहि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः।।

मनु. 9/5

स्त्री पतन के कारण- स्त्री के पतन 6 कारण है मादक द्रव्यों का सेवन दुर्जनों का साथ पति से दूर रहना (धर्मसभाओं में दूर रहना ही पड़ता है। अन्य पुरुषों का सानिध्य विवश होता ही है। यहाँ वहां प्रवास भ्रमण होता ही है।) भ्रमण, असमय में सोना तथा दूसरे के घर में निवास यह 6 कारणों से स्त्री का पतन होता है। अतः इनको सभा से दूर रहना चाहिये। सत्संग सभा श्रवणाधिकार है प्रवचन का नहीं।

आज स्त्री सभा की शोभा मानी जाती है। किन्तु स्त्री सत्कार के योग्य है। गृह दीपक की तरह गृह में ही सुशोभित होती है। पति को तथा पुत्र को तथा संस्कार से संभालने का कार्य स्त्री का है। न कि बाहर सभाओं की संभाल। सुयोग्य-श्रेष्ठ-रत्नों को जन्म देकर "जननी कृतार्था" शब्द

से भूषित होना स्त्री का वास्तविक धर्म है। स्त्री सत्पुत्र की जननी है। पूजा के योग्य है। गृह की शोभा है। गृह की लक्ष्मी है।

प्रजनार्थं महाभागा, पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।।

मनु स्मृति 9/26

परिवार जनों के इतर वर्गों के संसर्ग से स्त्री निश्चित ही दूषित हो जाती है। इस वृत्ति में यह सभी संसर्गजन्य दोष नैसर्गिक है।

आवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि

मनु. 9/94

स्त्री पतन के कारण-

अत्रिस्मृति में वर्णन आया कि स्त्री के पतन के 6 कारण है वेद मंत्रों का जप, तप अकेले तीर्थयात्रा, सन्यास ग्रहण या ब्रह्मचर्य धारण करना। (स्त्री तो रजस्वला होते ही ब्रह्मचर्य से च्युत हो जाती है। कोई स्त्री ब्रह्म चारिणी होती ही नहीं। ब्रह्मचारिणी शब्द तो पार्वतीजी तथा जानकी जी को ही आया है। स्त्री को स्मृतियों में पतिमरण के पश्चात् ब्रह्मचर्य धारण का विधान लिखा गया है। कोमार्य अवस्था में नहीं।) मंत्रानुष्ठान और देवताओं की बिना पति के वैदिक पद्धति से यागादि में आराधना करने से स्त्री तथा शूद्र दोनों का पतन होता है।

जपस्तस्तीर्थ यात्रा प्रव्रज्या मंत्र साधनम्।
देवताराधनं चैव स्त्री शूद्र पतनानि षट्।।

अत्रिस्मृति 113

व्यास स्मृति में बताया कि ऊँचे स्वर से बोलने में भी स्त्री का साध्वी स्वरूप समाप्त हो जाता है फिर धर्म सभाओं में हाँथ उठा उठाकर प्रलाप करने में तो कहना ही क्या?

न केन चिद्ववदेच्च अप्रलाप विलापिनी।
न चापि व्ययशीला स्यान्न धर्मार्थ विरोधिनी।।
नौच्चैर्वदेन्न पुरुषं न बहून्पत्युरप्रियम्।।

व्यास स्मृति 2/33

स्त्री का ध्यान तथा उससे संभाषण (श्रवणादि) क्रिया नहीं करनी चाहिये इससे पुरुष का पतन होता है सभा में यह सभी होता ही है।

न ध्यातव्यं न वक्तव्यं न कर्त्तव्यं कदाचन।

दक्षस्मृति 7/33

अज्ञान के कारण मूर्ख, धर्मशास्त्रों को न जानने वाले, (जिनको वेद-शास्त्र व्याकरण का विधिवत् ज्ञान नहीं है।) जब धर्म का उपदेश करते हैं तब उनके धर्मोपदेश का वही पाप सौ गुना होकर उपदेश करने वालों मूर्खों को ही खा जाता है। श्रोताओं का अमंगल तथा अकल्याण होता है।

यद्वदन्ति तमोमूढ़ा मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृनृधि गच्छति।।

पराशर स्मृति 8/13

स्त्री को न व्रतोपवास ने विविध प्रकार के धर्माचरण (धर्मोपदेश) आदि की आवश्यकता नहीं है। वह केवल पति सेवा से ही सद्गति प्राप्त करती है।

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पति पूजनात्।।

शंख स्मृति 5/8

साध्वी स्त्री को चाहिये कि वह अपनी वाणी तथा नेत्रों का प्रयोग अपने पति के अतिरिक्त किसी के लिए न करें। (धर्मसभा में वक्तव्य में दोनों का प्रयोग पर के लिए होता है, स्व के लिए नहीं।) धर्म में ही स्वतंत्र नहीं है फिर धर्म सभा में स्वतंत्रता कदापि संभव नहीं।

अस्वतंत्रा धर्मे स्त्री।
नातिचरेद्भर्तारं वाक्-चक्षुः कर्मसंयता।।

गौतम स्मृति 19/1

सभा गोष्ठी में पुरुषों के मध्य रहने में स्त्री का विनाश अवश्यंभावी है। पिता के घर में स्वतंत्रता, यात्राओं में परसंगति, पुरुषों की गोष्ठी और विदेश का भ्रमण मना है।

स्वातन्त्र्य पितृमंदिरे निवसति यात्रोत्सवे संगतिः।
गोष्ठी पुरूष सन्निधौ अनियमो बाह्ये, विदेशे तथा।।
संसर्गः सह पुंश्चलीभिः असकृद् वृत्तेर्निजायाः क्षतिः।
पत्युर्वार्धकमीर्ष्यितं प्रहसनं नाशस्य हेतुः स्त्रिया।।

उपरोक्त आर्ष उद्धरणों से यह सुस्पष्ट हो चुका है स्त्री सभा में बैठकर उद्घोष-भाषण-प्रवचन-उपदेश नहीं कर सकती हैं। यदि करती हैं तो सुनिश्चित शास्त्रीय अपराध कर रही है।

गृहिणी को गृह में कथा कीर्तनाधिकार- शास्त्रों में कथा-सत्संग-कीर्तन में अपने पति-पुत्र के साथ दोष नहीं है। किन्तु वह समाज की दृष्टि की केन्द्र बिन्दु न बने। प्रवचन में यह प्रमुख होता है। महापुण्यशीला परम साध्वी सती पति परायण कौशल्याजी सभी रानियाँ

कथा सुना करती थी। "**कहहिं वसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहिं महीप सहित निवासा।**" रानियाँ श्रवण करती थी। पर श्रावण नहीं। कथाएँ वे परस्पर सुनाती थीं, समाज में नहीं। श्रीराम जानकी जी के वनगमन के समय कहते हैं, सीता मेरी वियोगिनी माता कौशल्या को तुम कथा सुनाया करो।

जब-जब मातु करहिं सुधि मोरी।
होइहि प्रेम विकल मति मोरी।

तब-तब तुम्ह कहि कथा पुरानी।
सुन्दरि समुझाए मृदुबानी।।

रामचरित मानस

वा. रामायण में दशरथ जी को कौशल्याजी, कौशल्या को सुमित्राजी कितना ज्ञानोपदेश करती हैं पर सभा के मध्य नहीं। परिवार के मध्य।

इसी प्रकार मानसजी में श्रीराम चरित का गायन परस्पर नर-नारी करते हैं।

"नारि नर करहिं राम गुणगान"

अगस्त्य संहिता में वर्णन है कि अनेक किन्नरियाँ तथा गंधर्वियाँ श्रीराम गुणगान करती थीं। ब्रह्म पुराण में भी वर्णन है कि स्त्रियों में ही गायन कीर्तन कर सकती है

दिव्यगीतवैर्धन्यैः क्रीडमाना वरांगनाः।
वीणा वेणु मृदंगैश्च पणवैश्च गोमुखैः।।

क्रीडन्त्या सदा दृष्टा विलासिन्यः परस्परम।

ब्रह्म पुराण 46/20/29

अतः स्त्री को सभाधिकार पुरुष सान्निध्य का निषेध पूर्ण रूप से ही है।

स्त्री को शास्त्राधिकार प्रवचनाधिकार नहीं है-

स्त्री को वेद तथा शास्त्रों में अधिकार नहीं है यह स्त्री की उपेक्षा या अपमान नहीं है। जिस शास्त्र ने स्त्री को सर्वोपरि बताया है। जिसको मनु महाराज ने "**पितुर्दशगुणा माता गौरवेणाति रिच्यते**" पिता से भी माता दशगुणित आदरणीया है। तब इसमें अन्यथा अर्थ नहीं लेना चाहिये अतः स्त्री को शास्त्र वैदुष्य प्राप्त कर प्रवचन करने का भी धर्मसभा में अधिकार नहीं है।

शास्त्राधिकारो न स्त्रीणां न ग्रन्थानां च धारणे।
तस्मादिहान्ये मन्यन्ते तच्छासन मनर्थकम्।।

ब्रह्मखण्ड 9/6 भविष्यपुराण

यदि शासन उपदेश करती है तो अनर्थ होता है। जब अध्ययानिधाकर नहीं तो प्रवचन का अधिकार कैसे हो सकता है।

आगमैक क्रियायोगे स्त्रीणामध्यधिकारिता।।

स्त्री को वैदिक क्रियाओं (वेदपाठ-अग्हिोत्र-मंत्रपाठ-मंत्रजाप गायत्री आदि का जब मना है।) का निषेध है। वैदिक संध्या भी मना है। स्त्रियां भगवन्नामजप मूर्तिपूजा पुराणोक्त मंत्र दुर्गासप्तशती हनुमान चालीसा रामायणादि का पाठ कर सकती है।

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मव्यवस्थितिः।
निरिन्द्रया ह्यमंत्राश्च स्त्रीभ्योऽनृतमिति स्थितिः।।

मनु 9/18

स्त्री को साष्टांग प्रणाम करना शास्त्र ने निषेध किया है। स्त्री अग्नि में वातावरण शुद्धि के लिए बना मंत्र के धूप गूगल छोड़ सकती है। पुरुष

के गृहवास न होने पर अग्नि में बिना स्वाहा बिना मंत्र बोले बिना नमक के अन्न की भोजन निर्माण वाली अग्नि में आहुति दे सकती है। किसी भी मंत्र में ॐ का उच्चारण भी इनको निषेध है।

स्त्री का विवाह होना ही उपनयन है। पति सेवा ही ब्रह्मचर्य व्रत है, गृह कार्य की दक्षता ही अग्निहोत्र है। तीनों कार्यों से ब्रह्मलोक की प्राप्ति स्त्री को हो जाती है। फिर क्या करना अशास्त्रीय कर्मों को करने से।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौ वासो गृहार्थोअग्निपरिक्रिया।।

मनुस्मृति 2/67

अतः स्त्री को वेदाधिकार मंत्राधिकार तथा प्रवचनाधिकार नहीं हैं। वह अधिकारियों की जन्मदात्री जननी है जगत्पूज्या है।

स्त्री को मंत्र दीक्षा देने का अधिकार नहीं-

मनुस्मृति में स्त्री को पृथकतः मंत्रदात्री गुरु होने का अधिकार नहीं है महर्षि वाल्मिकी लिखते हैं "**नास्ति मातृसमो गुरूः**" माता तो स्वतः सदुगुरू हैं। पर दीक्षा का अधिकार नहीं

दैवपित्र्यातिथेयानि्।। मनुस्मृति 3/12
नास्ति स्त्रीणां क्रिया मंत्रैरिति धर्मव्यवस्थितिः।।

मनु 9/18

जब शास्त्र का ही अधिकार नहीं तो मंत्र देने का अधिकार कैसे संभव हो सकता है- स्त्री से मंत्रोपदेश से अनर्थ होता है।

शास्त्राधिकारो न स्त्रीणां न ग्रन्थानां च धारणे।।
भविष्यपुराण तमादिहान्ये मन्यन्ते तच्छासनमनर्थकम्।।

ब्रह्म खं. 9/6

भगवती सीता को कहा जावे कि वे श्रीराम मंत्र की आचार्या हैं तो यह युक्तियुक्त नहीं तो इसका उत्तर यह समझना चाहिए कि "**श्रीसीता रामतः प्राप्तं सा ददौ वायुसूनवे।।**" (सनत्कुमार संहिता) सीताजी ने रामजी से ही राममंत्र प्राप्त किया, फिर हनुमानजी को दिया। तो प्रथम तो हनुमानजी पुत्र हैं अतः पुत्र की माता स्वयं गुरू होती ही है। द्वितीयतः जानकीजी को स्त्री मानना ही सबसे बड़ा अपराध है। **गिरा अरथ जस बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न वे स्त्रियोचित तथ्यो से परे हैं।**

व्यर्थ अशास्त्रीय पापकर्म न करते हुए श्रेष्ठ आचार्यों को ही अपना गुरू बनाना श्रेयस्कर है। स्त्री को गुरू बनाने का प्रमाण किसी वेद पुराण उपनिषद् रामायण में नहीं है।

ब्रह्मविद वेदज्ञ मन्त्रज्ञ ही दीक्षा तथा उपदेश का अधिकारी है। स्त्री को मंत्र ग्रहणाधिकार ही नहीं तो मंत्रदीक्षा कैसे देगी।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।।
पतिपरायणा स्त्री ही साध्वी तथा ब्रह्मचारिणी।

अथर्ववेद 19/43

स्त्री को श्राद्ध पिण्ड यज्ञ के बिना ही विवाहित होकर पति सेवा से सद्गति प्राप्त होती है। वहीं साध्वी का फल।

नास्तिकश्चिद् स्त्रिया यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषणम्।
या च भर्तृरि सुश्रूषा सा स्वर्गायाभिजायते।।

महाभारत विराट 16/42

महाभारत में वर्णन है कि जब अम्बा शाल्व के पास से निराश लौटी तब उसने सन्यास लेने का प्रस्ताव ऋषि होत्रवाहन तथा अकृतव्रण के सामने रखा था। तब उन ऋषियों ने निषेध किया कि स्त्री की गति पति या पिता ही हो सकता है। अन्य नहीं तथा सन्यास में उसका अधिकार ही नहीं है।

न च तेऽन्या गतिर्नांया भेवद् भद्रे यथा पिता।
पतिर्वापि गतिर्नार्याः पिता वा वरवर्णिनि।।

महाभारत

गतिः पतिः समस्थाया विषमे च पिता गतिः।

उद्योग पर्व 176/8

प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्या विशेषतः।।

महा. उद्योगपर्व 176/8

मनुस्मृति में वर्णित है कि स्त्री का ब्रह्चर्य पतिपरायण होना ही है। गृहस्थी की रक्षा अग्हिोत्र है। विवाह होना ही उपनयन है।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतिः।
पतिसेवा गुरौवासो गृहार्थोअग्नि परिक्रिंया।।

मनु. 2/67

यदि विवाहिता या पतिसंयुक्ता नहीं है तो वह स्त्री जीवन भर अधवा के रूप में अपावन है। (विधवा होना पृथक तथ्य है)

स्नायीत च त्रिरात्रन्ते सचैलमुदिते रवौ।
विलोक्य भतुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मत:।।

व्यास स्मृति 2/40

पतिदर्शन के बिना पावन नहीं होती।

भविष्य पुराण में विवाहित को ही सती साध्वी कहा है अविवाहिता को नहीं–

क: श्रद्धायात्सतीत्येवं साध्वीमपि हि योषितम्।

कितनी ही विवाहिताओं को रामायण पुराणों में साध्वि! सम्बोधन है। पति सेवा सहिष्णुता तथा गोपनीयता इन तीनों गुणों वाली स्त्री साध्वी कहलाती है।

तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्वीति योषित:।।

विष्णुपुराण 6/2/29

मनुजी ने स्पष्ट परिभाषा दी है कि मनसा वाचा कर्मणा पति के प्रति समर्पित नारी ही सती तथा साध्वी शब्दों से लोक में सम्मानीया है।

पतिं या नाभिचरति मनोवाक्काय संयता।
या भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते।।

मनु 9/29

स्त्री की महिमा तथा गुण–

जिन मनुजी ने स्त्रियों के अधिकारों को संतुलित किया, उन्होंने यथार्थ प्रशंसा भी की है कि श्रेष्ठ संतति, पुरुष का यज्ञ कार्य और पितरों को तथा पति को स्वर्ग में केवल स्त्री ही पहुँचा सकती है।

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह।।

9/28

यह सर्वविदित है कि स्त्री एक सच्चे मित्र माता-रंभा और क्षमा करने में पृथ्वी के समान है।

कार्येषु मंत्री करणेषु दासी भोजनेषु माता शयनेषु रंभा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री षण्गुण्यमेतत् पतिव्रतानाम्।।

वेदों ने बिना पत्नी के यज्ञ करने का निषेध किया है।

अयज्ञो वा एष यो अपत्नीकः (तैत्तरीयोपनिषद् 2/2/2/6)

पुनश्च प्रवचन और रजोधर्म-

शास्त्र मर्यादा के अतिक्रमण का इससे बड़ा क्या प्रमाण हो सकता है कि रजस्वला अवस्था में भी व्यासासन आसीन होकर मानसजी तथा भागवतजी की कथा का वाचन करना। जिस व्यासपीठ को ज्ञानवृद्ध तपोवृद्ध भी नमन करते हैं उसका पूजन करते हैं, उस पर इतना बड़ा अधर्म रजोधर्म विराजित हो। सुनिश्चित सनातन सभ्यता तथा धर्म दोनों रसातल को चले गये हैं। स्वयं में आत्मग्लानि नहीं होती तथा इस प्रवञ्चना की परिणति का किञ्चित बोध भी उनको नहीं होता। कब रजःस्राव हो, यह सुनिश्चित भी कम है। फिर 365 दिन वर्ष के पूरे अनुबंधित हैं। इन साध्वी विदुषियों से वे गृहिणियाँ कितनी प्रणम्य तथा श्रेष्ठ हैं जो रजोधर्म का पालन करती है। धर्मशास्त्र क्या कहते हैं-रजस्वला प्रथम दिन चाण्डाली, द्वितीय दिवस में ब्रह्महत्यारिणी, तृतीय दिवस में रजकी (धोविन) चतुर्थ दिवस शुद्ध होकर पाँचवे दिन देवकार्य के योग्य होती है।

प्रथमेन्हि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेन्हि शुद्धयति।।

अंगिरा स्मृति 7/38, पाराशर स्मृति 7/20

उसमें भी यदि रजोमुक्ति के पश्चात् पति दर्शन नहीं करती तो अपवित्रा ही रहती है-

स्नायीत च त्रिरात्रान्ते सचैल मुदिते रवौ।
विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धं भवति धर्मतः।।

व्यास स्मृति 2/40

यदि रजस्वला ब्राह्मणी, ब्राह्मणी को कदाचित् स्पर्शकर ले तो तीन दिन तक निराहार रहकर प्रायश्चित करे। फिर प्रवचन करने का इस अवसर का प्रायश्चित तो मनु आपस्तंब अंगिरा व्यास जी नहीं बता सकते।

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यां ब्राह्मणी ब्राह्मणी।
यावत्तिष्ठेन्निराहरा त्रिरात्रेण शुद्धयति।।

पराशर स्मृति 7/13

रजस्वला किसी की दृष्टि में न आवे और न ही भूलकर भी देवकार्य को करे-

सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितान्तगृहे वसेत्। व्यास स्मृति 2/38

प्रवचन से बड़ा पुनीततम तथा देवकार्य क्या हो सकता है?

इस समय कुछ पढ़ी लिखी वर्तमान मिथ्या उपाधिधारिणी शास्त्र संगत रहिता, स्वेच्छाचारिणी स्त्रियाँ कहती हैं कि क्या होता है रजस्वला अवस्था में व्यास पीठ पर बैठने से, मंदिरों में प्रवेश करने से तथा कथा बोलने से पर उन धर्मविरोधिनी धर्माचार्याओं से क्या कहें? शास्त्र ने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि रजस्वला को छूकर भी कोई मंदिर या देवकार्य में प्रवेश करता है तो वह अज्ञानी एक सहस्र वर्ष तक मरणोत्तर रजः पान करता हुआ नरकवास करता है-

स्पृष्ट्वा रजस्वलां नारीं यो मां स्पृशति निर्भयः।
वर्षाणां तु सहस्त्रैकं रजः पिवति निर्घृणः।।

वाराह महापुराण 131/20

धर्म के व्यतिक्रम से व्यक्तिशः नहीं सार्वभौमहानि भी होती है यदि रूद्र या विष्णु मंदिरों में रजस्वला शूद्रादि प्रवेश कर स्पर्श करते हैं तो देवमूर्ति का देवत्व तो चला ही जाता है साथ ही राजा तथा प्रजा दोनों की हानि होती है।

रुद्रस्य वा विष्णोर्वा प्राकाराभ्यान्तरे यदि।
रजस्वला वधूश्चैव चाण्डालाश्च समागतः।।
तद्देवस्य कलाहानिः राज्ञो मरणामेव च।
तद् ग्रामस्य क्षयः प्रोक्तः शस्यानां नाशनं परम्।।

(कारणागम प्रायश्चित)

इसीलिए दक्षिण मंदिरों में मंदिर से बाहर गरुड़स्तंभ या ध्वज देखकर भक्ति करने का विधान है।

चाण्डाल पुल्कसो वापि तादृशा रजस्वलादिः।
प्रतिलोमान्त्यजादीनां स्तूपं दृष्ट्वा समाचरेत्।।

(नारद पाञ्चरात्र पद्म संहिता)

गर्भहत्या, वालेका, रजस्वला से स्पर्श या उसका देखा हुआ अन्न भी नहीं खाना चाहिये।

भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्यु दक्यया।। मनुस्मृति 4/208

किं बहुना शास्त्र की इन मर्यादाओं का अतिक्रमण आज जो अधर्म हो रहा है उसकी परिणित क्या होगी आज वैज्ञानिक लौट रहे हैं, उन्होंने भी कहा है कि रजस्वला स्त्री के शरीर के विषाणु कोमल वनस्पतियों पर स्पर्श किये हुए पदार्थों पर प्रभाव डालते हैं। किन्तु आज की तथाकथित

देवियाँ अपने इस अनियोजित अधार्मिक अशास्त्रीय अप्रामाणित अस्वाभाविक अनियंत्रित और अज्ञानता के ताण्डव में निमग्न हैं। भगवान् कहते हैं-

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

गीता

रजस्वला के स्पर्श से कथा श्रवण से रज:पान जैसी नारकीय यातना भोगने को हम तत्पर हैं, किन्तु इस व्यामोह को नहीं छोड़ पा रहे हैं। अत: गोस्वामी ने लिखा।

पुरुष त्यागि सक नारिहि जो विरक्त गति धीर।
न तु कामी विषयावश विमुख जो पद रघुवीर।।

इन धर्मों पर ध्यान देना आवश्यक है। धन तथा प्रशंसा के प्रलोभन में धर्म का बहिष्कार नितान्त अशोभनीय तथा पतन का हेतु हैं।

परस्त्री तथा पर पुरुष की दूरी भी अनिवार्य-

सत्य को सहज स्वीकार करना निर्मल तथा बुद्धिमान व्यक्ति का लक्षण है। धर्म की ओर से कहीं अधर्म न पनप जावे। सभी शास्त्रों ने एक मतेन कहा कि स्त्री से दूरी रखिये **''योगवासिष्ठ''** में श्रीराम को गुरु वसिष्ठजी समझाते हैं कि जहां स्त्री है वहां स्वाभाविक भोगेच्छा ही है। अतएव स्त्री से दूर रहना चाहिये-

यत्र स्त्री तत्र भोगेच्छा निस्त्री कस्य कृ भोग भूः।
स्त्री त्यक्त्वा जगद्त्यक्तं जगत् त्यक्त्वा सुखी भवेत्।।

योग वासिष्ठ

जिस व्यासपीठ से योग वैराग्य ज्ञान भक्ति की अनुरक्ति की अपेक्षा है, वहीं भोगाधिष्ठात्री पूर्वत: विराजमान हैं। आप कहें कि नहीं वह बहिन

बेटी है तो परमहंस सम्राट शुकदेवजी भागवत में कह रहे हैं कि माता-बहिन-बेटी अपनी भी हो तो भी इनका साथ नहीं करो। इन्द्रियाँ अतीव बलवती हैं विद्वानों को भी मथ डालती है। फिर परकीयाओं के साथ सान्निध्य तथा उनके हाव-भाव में निमग्न श्रोता रामकथा विस्मृत कर कामोन्मुखी हो जाते हैं। यह श्रोताओं के शब्द ही सत्यतः लिख रहा हूँ।

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।

मनुस्मृति 2/215

बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।

भगवत

हम शुकदेवजी से भी महान हो गये पूर्व ऋषियों से भी अधिक वीतरागी हैं जो हमारे ऊपर यह प्रभाव नहीं पड़ेगा। अवश्य पड़ेगा इसलिए इस समस्या से सुदूर ही श्रेयस्कर है।

पद्मपुराणकार लिखते हैं कि स्त्री घृतकुंभ है पुरुष अग्नि है। अतः दोनों को एक स्थान पर रखना कितना अविवेकता पूर्ण कार्य है।

सुनिश्चित अग्निकाण्ड ही संभव है-

घृतकुंभ समानारी तप्तांगार समः पुमान्।
तस्माद् घृतं च वन्हिं च ह्येकस्थाने न धारयेत्।।

पद्मपुराण 1/49/21

पुनः व्यासजी लिखते हैं कि जैसे सुन्दर भोजन एकान्त में रख दें, असुरक्षित रख दें तो कुत्ता कौआ का ही होता है। ऐसे ही स्वच्छन्द ऐकान्तिक स्वतंत्र स्त्रीवास भी दुष्टाओं का ही स्वरूप है।

आरक्षणाद्यथा पाकः श्वकाक बशगोवसेत्।
तथैव युवती नारी स्वच्छन्दा दुष्टतां ब्रजेत्।।

पद्मपुराण 1/49/25

भागवतकार जहाँ सतियों की वन्दना करते हैं वही वे स्त्रियों के उन्मत्तस्वरूप को भी प्रकट करते है कि इनकी वाणी मीठी स्वरूप सुन्दर होता है किन्तु हृदय छुरे की धार के समान तीक्ष्ण होता है अतः इनसे दूरी बनानी चाहिये।

हृदय क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितुम्।

भागवत

गोस्वामी लिखते हैं कि **''नारि विष्णु माया प्रकट''**

जप-तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी।

बुधिबल शील सत्य सब मीन। वन्सी सम त्रिय कहहिं प्रवीना।।

आप स्वयं विचार करें कि जो स्त्री-जप-तप नियम-वृद्धि सत्य एवं धर्म विसर्जित कर रही है, उससे थोड़ी दूरी बनाने में ही कल्याण है और देवियों को भी दूर रहने में ही उनकी शोभा है। धर्म है। पुराण कहते हैं कि इन कथा-गोष्ठी के रूप में भी दोष व्युत्पन्न हो जाएगा। नहीं रुक सकता है।

दौर्गत्यमतिरुपं चाप्यसत्संग स्वतंत्रता।
पानाशन कथा गोष्ठी प्रियत्वकर्म शीलता।।

भविष्य पुराण ब्राह्म पर्व 8/20

जिस पीठ से ज्ञान भक्ति वैराग्य शिक्षण हो, वहाँ स्त्री की आवश्यकता नहीं, स्त्री आसक्ति है। महाभारत में वर्णन है कि स्त्री क्षेत्रस्वरूप पुरुष क्षेत्रज्ञ है। अतः इनके साहचर्य से पुरुष को कभी मुक्ति नहीं होती बंधन ही होता है। अतः प्रयत्नतः इनसे दूर रहना चाहिये।

प्रकृत्या क्षेत्र भूतास्ता नराः क्षेत्रज्ञ लक्षणः।
तस्मादेवा विशेषेण नरोऽतीचद् विशेषतः।। महाभारत शांति पर्व
किं बहुना (थोरे महँ जानिहन्हिं सयाने।।)

गार्गी और मैत्रेयी का मिथ्या उदाहरण-

वर्तमान व्यास पीठाधीश्वरियाँ जो कहती हैं कि गार्गी मैत्रेयी ने व्यासासन संभाला हम भी हम भी संभालेंगे। उनका यह उदाहरण तथा तर्क दोनों मिथ्या असंगत हैं।

बृहदारण्यकोप निषद् में गर्ग वंशीया वाचक्रवी की पुत्री गार्गी ने राजा जनक के यज्ञ में शास्त्रार्थ विजेता याज्ञवल्क्यजी से प्रश्न किये थे। उन सभी प्रश्नों का उत्तर याज्ञवल्क्यजी ने दिया। अंतिम अति प्रश्न पर याज्ञवल्क्यजी ने कहा कि तेरा मस्तक गिर जाएगा। अति प्रश्न (मर्यादा विहीन अशास्त्रीय अनावश्यक मूर्खतापूर्ण प्रश्न को अति प्रश्न कहते हैं) नहीं करना चाहिये। तुरन्त गार्गी ने याज्ञवल्क्यजी के लिए कहा था कि "याज्ञवल्क्यजी जैसे ऋषि को प्रणाम करना ही श्रेयस्कर है। इनसे कभी कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता।" गार्गी के इस प्रश्न का कि "ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है" यह स्त्री के लिए अति प्रश्न है। इसलिए मना किया था, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि याज्ञवल्क्यजी इसका उत्तर नहीं जानते थे। नहीं वह गार्गी उत्तर की अधिकारिणी नहीं थी, इसलिए अनुत्तरित छोड़ दिया था।

बृहदारण्यको पनिषद् अष्टम् ब्राह्मण 3/6

यहाँ न तो व्यासपीठ लगा था, न ही प्रेक्षा समाज था यह गोष्ठी वार्ता थी। ऐसी गोष्ठी वार्ता तो पुराणों में कई स्थानों पर स्त्रियाँ करने की अधिकारिणी रही है। अतः न तो गार्गी वेद प्रवाचिका थीं, न ही शास्त्रार्थ में उन्होंने याज्ञवल्क्यजी को परास्त किया था। ऋषियों के मध्य श्रुतज्ञान कन्याओं स्त्रियों को स्वाभाविक हो ही जाता है। इसमें कोई व्यासपीठ या प्रवचनात्मक पुष्टि स्त्री जाति की नहीं है।

बृहदारण्यकोपनिषद के पञ्चम् ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य पत्नी मैत्रेयी से आत्मविषयक जिज्ञासात्मक प्रश्न किये हैं। उन्हीं प्रश्नों का समाधान याज्ञवल्क्यजी ने किया है। कहीं शास्त्रार्थ सम्बन्धी या मैत्रेयी के प्रवचनपीठ का संकेत नहीं है। (बृहदारण्यकोपनिषद् 4/5)

उपनिषदों में ब्रह्मवादिनी विश्ववारा, घोषा, सूर्या, अपाला ने भी कहा है कि स्त्री को पति के साथ यज्ञकर्म में सहयोग करना चाहिये, तथा अग्नि का संरक्षण करना चाहिये। इनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता था। ये सत्संग विदुषी थी। पर इनके द्वारा धर्मोपदेश का यहा व्यासपीठ का संकेत नहीं मिलता है।

स्त्रीमुख से धर्मोपदेश सुनने का दोष-

स्त्री के मुख से धर्मोपदेश सुनने था वैदिक साहित्य में स्पष्ट दोष वर्णन किया गया है। शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ-ब्राह्मण में स्पष्ट उल्लेख है कि स्त्री के मुख से जो दुरात्मा धर्म मीमांसा या व्याख्या श्रवण करते है, उन्होंने कौन सा पान नहीं कर किया, दो बहुत बड़े पाप पूर्वकाल से माने जाते रहे है, ब्रह्महत्या तथा गुरु पत्नी गमन। ये दोनों पाप उन दुरात्मा श्रोताओं को स्त्रीमुख से धर्म मीमांसा श्रवण करने से लग जाते हैं। यथा-

स्त्रीमुखात् धर्म मीमांसा, यः श्रृणोति दुरात्मना।
किं तेन कृतं वै पापं, ब्रह्महा गुरुतल्पगः।।

(शतपथ ब्राह्मण-व्याख्या भाग की टिप्पणी)

जब शतपथ ब्राह्मण जैसे अति प्राचीन वेद वाङ्मय ने स्पष्ट श्रुति फल निर्देशित कर दिया तो फिर हम क्यों स्त्रियों से प्रवचन सुनने के लिए व्यामोहित होते हैं?

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि व्यासपीठ या धर्मपीठ पर ब्राह्मण-आचार्य के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं बैठना चाहिये। ब्राह्मण को

भी वेदादि शास्त्रों का विधिपूर्वक सम्यक् अध्ययन करना चाहिये। महाकवि हर्ष ने नैषधीय चरित में कहा कि अधीत को हृदयंगम करना, फिर उसे आचरण में स्थापित करना, तब कथा प्रवचन के माध्यम से सर्व साधारण को प्रेरित करना ये स्वाध्याय के चार महत्वपूर्ण अंग है। यह ब्राह्मण के पास होना चाहिये।

"अधीत बोधाचरण प्रचारणैः दशाश्चस्त्रः प्रणयान्नुपाधिभिः"

(नैषधीय चरित श्री हर्ष) आचरण में बिना उतारे प्रवचन का अधिकार नहीं है। ब्राह्मण के श्रुति तथा स्मृति दोनों नेत्र है। दोनों परिपूर्ण होना चाहिये। केवल एक रहने पर काणत्व तथा शूण्य होने पर अन्धत्व ही सिद्ध होती है फिर दिशा निर्देश कैसा ?

श्रुतिः स्मृतिरुभे नेत्रे द्विजस्य परिचक्षते।
एकेन हीनः काणः स्याद् द्वाभ्यामन्धः प्रचक्षते।।

सम्यक प्रकार शास्त्र ज्ञाता ही व्यासपीठ का अधिकारी होता हैं तथा जन्मना ब्राह्मण भी होना अनिवार्य है।

बुध्यमानः सदाहार्थं ग्रन्थार्थ कृत्येमेव च।
एवं कथयेत् सम्यक् स विप्रो व्यास उच्यते।।

भविष्य पुराण मध्यम पर्व 3/12

जब तक शास्त्र का अर्थ बोध न हो तब तक केवल भार ढ़ोना ही है।

सभारवाहः किल अभूत स्थूणो बा न वेत्तियोऽर्थम्।।

निरुक्तम्

अतः अध्ययन तथा ब्राह्मण का शरीर होना दोनों अनिवार्य है। आजकल कई तथाकथित ब्राह्मणेतर यह उदाहरण देकर व्यासासनासीन

होते हैं कि सतयुग त्रेता के राजर्षि भी ब्राह्मण हुए हैं। किन्तु शास्त्र की ऐतिहासिकता को वे यदि स्वीकार करते हैं तो यह भी समझना चाहिये कि कलियुग में अल्पायु होने से वे तपश्चर्या संपन्नता पूर्वक ब्राह्मण नहीं हो सकते। यदि तपस्या करें, स्वाध्याय करें तो भी शास्त्र मना करता है। कलियुग में ब्राह्मणांश से समुद्भूत ब्राह्मण होगा न कि तपस्वी।

"कलौ ब्राह्मणवीर्यात् न तपश्चरणादिभिः"

वर्तमान में धर्मशास्त्र को अर्द्ध कुक्कुटीन्याय से स्वीकार करते हैं। (आधी मुर्गी काट लें आधी बच्चे देने के लिए छोड़ देंगे) इससे या तो धर्मशास्त्र को पूरा मानो अन्यथा अधकचरे-आचरणहीन-वर्ण विहीन स्त्री प्रभृति को जब निषेध किया है तो उसे स्वीकार क्यों कर धर्म विधि को पूर्ण करना चाहते हैं, यह उसी प्रकार की भ्रान्ति है जैसे अर्द्धकुक्कुटीन्याय।

अत्यन्त प्रश्चात्ताप का विषय है कि वर्तमान में दूरदर्शन पर कितने ज्ञान-रंक-शास्त्र ज्ञान विहीन जन, प्रवचन निरंतर करते जा रहे है। भोली-भाली धर्मप्राण जनता उनको वेदवाक्य मानकर स्वीकार करती हुई पतन के गर्त में जा रही है। अतः इसको समझना समझाना आज भाषा में गतानुगतिक की गाली खाना है। जब कि गोस्वामीजी कहते हैं कि-

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई।
तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई।।

आज धर्म का परिष्कृत रूप सामने ला रहे हैं जो धर्म परिष्कार करता था, संस्कार देता था। उस धर्म का ये शिखा-सूत्र-संध्या-शास्त्रहीन वेदविहीन, अक्षरज्ञान रंक, ब्राह्मणेतर तथा देवियाँ धर्म का परिष्कार कर रही है। इसी का परिणाम सर्वत्र अमंगल हो रहा है। जहाँ अपूज्य की पूजा पूज्य को अपूज्यता होगी वहाँ अवृष्टि-अतिवृष्टि, मरण या भय व्याप्त होते रहेंगे।

अपूज्याः यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते।

त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।। शिवपुराण

एक ही मंच लगाकर ब्राह्मण-शूद्र-स्त्री-अन्त्यज-सभी वर्ग बैठकर शास्त्र विमर्श प्रवचन करते हैं। श्रेष्ठ विप्र नीचे बैठकर व्यासपीठ को तथा वक्ताजी को प्रणाम करते हैं वे इस क्रिया से ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व से गिर जाते है। उनका पुण्य नष्ट होता है। यह बात धर्मज्ञाता भीष्मजी ने व्यासपीठ से नहीं शरशैय्या पर बताया है।

अभार्या शयने विभ्रच्छूद्रं वृद्धं च वै द्विजः।
अब्राह्मणं मन्य मानस्तृणेष्वासीत पृष्ठतः।।

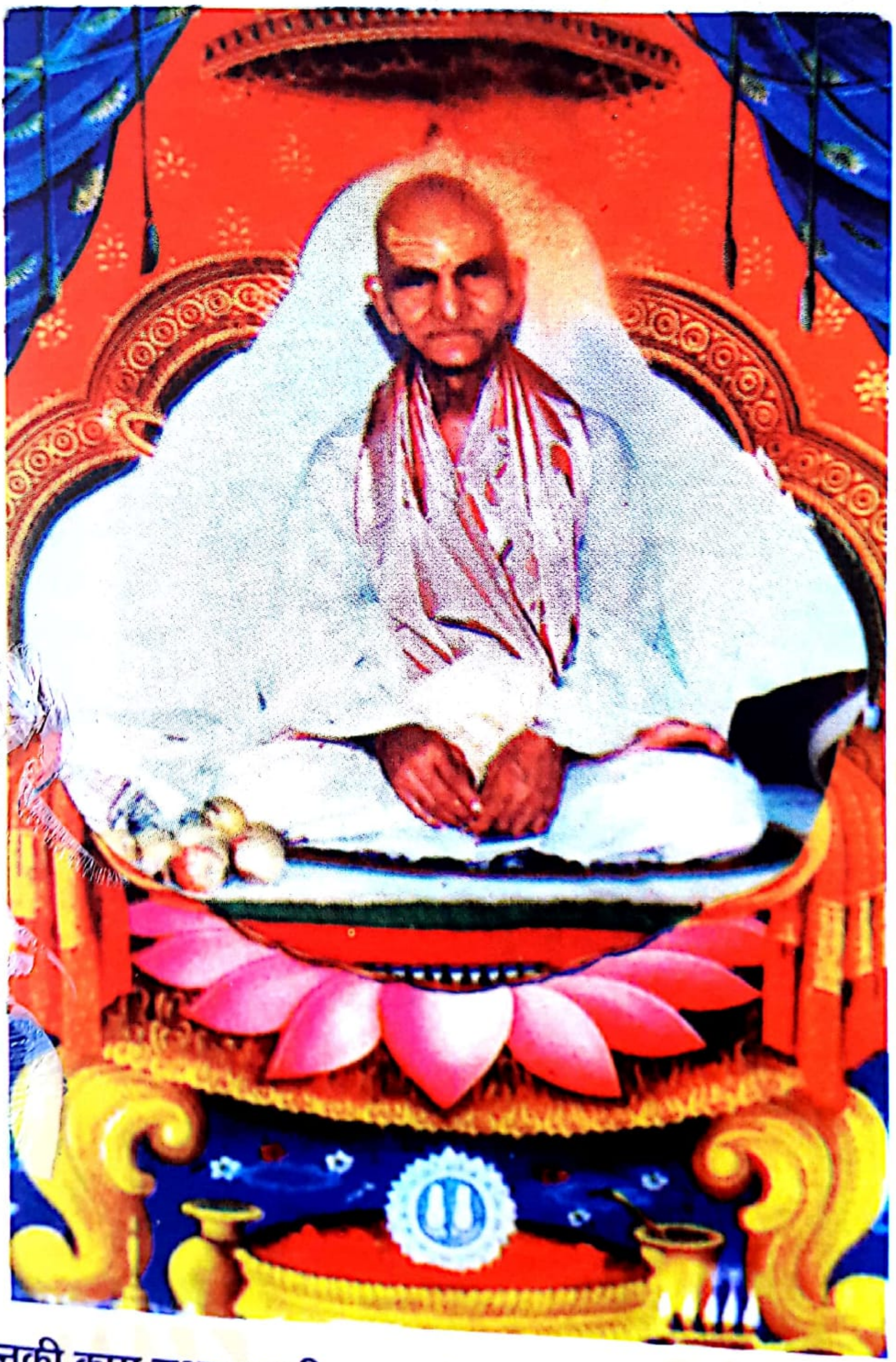
महाभारत शान्तिपर्व 165/28

सभी के सद्धर्म की रक्षा यह चारों वर्णों का दायित्व है कि धर्मसभा धर्मप्रवचन व्यासपीठ का चयन शास्त्रीय दृष्टि से करें। तब देखें धर्म का फल सद्यः (तत्काल) लाभकारी होता है। अयोग्य अनर्ह व्यक्ति स्वयं दूर हो जावें, जिससे उनका धर्म तथा सभी लोगों का धर्मरक्षण हो। उसी से सुख शांति भगवद्भक्ति-आत्मज्ञान ब्रह्मज्ञान संभव होगा अन्यथा कदापि नहीं।

वरणाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय शोक न रोग।।

❖❖❖❖

तपोमूर्ति ब्रह्मलीन परम पूज्य
भगवत्स्वरूप गुरुदेव (वापोली)



जिनकी कृपा तथा आशीष का संबल ही सारस्वत पथ का पाथेय सदा बना रहा, तथा जीवन के आचार–विचार सदाचार ही जिनका सदुपदेश रहा, ऐसे परम पूज्य अनन्त श्री विभूषित सारस्वत सार्वभौम परम पूज्य गुरूजी (वापोली) को सादर समर्पित.



डॉ. श्री रामाधार जी उपाध्याय
विद्यावाचस्पति
(एम.ए., पी.एच.डी. संस्कृत)

अन्य प्रकाशित ग्रन्थ

- हनुमच्चरित का क्रमिक विकास (शोधग्रंथ)
- मुण्डन दाह अशौच निर्णय
- व्यास पीठ की आचार संहिता
- वेद-पुराण शास्त्र परिचय
- रामायण के कतिपय समाधान
- एकादशी व्रत निर्णय एवं महात्म्य
- भक्ष्याभक्ष्य निर्णय
- नारी का धर्म एवं स्वरूप विमर्श
- षोडश संस्कार
- लील्यो ताहि मधुर फल जानू
- वैदिक गो महत्व मीमांसा
- ब्राह्मण परिचय तथा ब्राह्मण गोत्र मीमांसा

प्रकाशनार्थ

- भक्तिमती भीलनी
- सदाचार निर्णय
- प्रायश्चित निर्णय
- वेदों में मूर्ति पूजा

प्राप्ति स्थल :

प्रेमनारायण (ब्रह्मचारी)

17, रामायणम् ''श्रीराम कुंज'', श्रीराम कॉलोनी

होशंगाबाद रोड, भोपाल (म.प्र.) मो : 09009216664, 08718044308

श्री हनुमान निकेतन आश्रम, बीकलपुर (रायसेन) मध्यप्रदेश

मो. : 09826787902, 09754269821